

१९०१

# भा० दि० जैनसंघ-ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाका उद्देश्य

प्राकृत संस्कृत आदि में निबद्ध दि० जैनागम, दर्शन,  
साहित्य, पुराण आदिका यथासम्भव  
हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन करना

सञ्चालक

भा० दि० जैनसंघ

ग्रन्थाङ्क १-४

प्राप्तिस्थान

मैनेजर

भा० दि० जैन संघ

चौरासी, मथुरा

मुद्रक—कन्हैयालाल, कैलाश प्रेस, वी० ७१९२ हाड़ाबाग ( सोनारपुर ) वाराणसी ।

स्थापनाब्द ]

प्रति ८००

[ वी० नि० सं० २४६८

KA

GI

CHURN S

THE JAY  
VIRA

Pandit P

Pandit -

Fr 21

THE SEC  
THE ALL-I

VIRA SAMVAT

1063

Sri Dig. Jain Sangha Granthamala NO. 1 IV

**KASAYA-PALUDAM**

**IV**

**THIDI VIHATTI**

**BY**

**GUNADHARACHARYA**

**WITH**

**CHURNI SUTRA OF YATIVRASHABHACHARYA**

**AND**

**THE JAYADHAVALA COMMENTARY OF**

**VIRASENACHARYA THERE-UPON**

**EDITED BY**

**Pandit Phulachandra Siddhantashastrī,**

**EDITOR MAHABANDHA**

**JOINT EDITOR DHAYALA,**

**Pandit kailashachandra Siddhantashastrī**

*Nyayatitika, Siddhantaratna,  
Pradiknadhyapak Syadvade Digambara Jain  
Vidyalyaya Banaras.*

**PUBLISHED BY**

**THE SECRETARY PUBLICATION DEPARTMENT  
THE ALL-INDIA DIGMBAR JAIN SANGHA  
CHAURASI MATHURA**

**VIRA SAMVAT 2483 ] VIKRAMS 2013 [ 1956 A C.**

माला

द, रसद,  
मुम्बर  
मा

एक ( ) बारम्बा !

[ की. वि. वि. १९५८

8801

# Sri Dig. Jain Sangha Granthamala

Foundation year—]

[—Vira Niravan Samvat 2468

*Aim of the Series:—*

Publication of Digambara Jain Siddhanta,  
Darsana, Purana, Sahitya and other Works  
in Prakrit, Sanskrit etc. Possibly with Hindi  
Commentary and Translation.

DIRECTOR

SRI BHARATAVARSIYA DIGAMBARA JAIN SANGHA

NO. 1. VOL. IV

*To be had from —*

THE MANAGER  
SRI DIG. JAIN SANGHA.

CHAURASI, MATHURA,

U P. (INDIA)

*Printed by—Kanhaya Lal*

*At The Kailash Press, B. 7/92 Hara Bagha, Sonarpur Banaras*

800 Copies

Price Rs. Twelve only

श्री कथा  
विमर्शिका  
छापनेके छि  
साय ही शुरूके  
गवा। किन्तु शु  
इत्नेमें सीधे  
हो रहे हैं। द  
वैयार हैं।

इत सब  
गदकी ओरसे हो  
धर्मप्रमी और  
काशा है।  
देवा है।

इस म  
है। मेरा भी  
अपने जन्मका  
तोचके भागमें  
सुपौर वा० साहिब  
अत मैं आप

इस भाग  
है। दोनोके स्वामी

जयचमला  
भवेनी,  
दीपावली,

nthamala

Jain Samvat 2468

Siddhanta,  
other Works  
by with Hindi  
labar.

RA JAIN SANGHA  
IN

NGHA  
ASI MATHURA  
U. P. (INDIA)

Le  
Sourpax Bureau.

Price Rs. Twelve only

## प्रकाशक की ओरसे

श्री कसायपाण्डु (अपभ्रंशजी) के ज्येष्ठ भाग स्थितिदिग्दर्शक और पौर्णमासी भाग अनुमास विमर्शिका प्रकाशन एक साथ हो रहा है। इसका कारण यह है कि जिस प्रेसमें जौना भाग छापनेके लिए दिया जा चुका प्रेसने उसे छापनेमें आवश्यकतासे अधिक व्यय करना। साथ ही छपनेके पौर्णमासीकी शीघ्रता बाध गई। अब वहाँसे काम बड़ाकर दूसरे प्रेसको दिया गया। किन्तु छपनेके पौर्णमासीकी छापकर देनेमें पहले में देने पुनः बनावश्यक विद्यमान किया। इतनेमें दोसरे प्रेसने पौर्णमासी भाग छापकर दे दिया। इस तरह से दोनों भाग एक साथ प्रकाशित हो रहे हैं। शीपावलीके पश्चात् छटा और सातवाँ भाग भी प्रेसमें दिये जानेके लिये प्रायः तैयार हैं।

इन सब मतोंका प्रकाशन संघके वर्तमान समापति द्वावरी खेठ भागबन्दा की रौंगर गढ़वाँ ओरसे हो रहा है। छेठ साहब तथा उनकी धर्मपत्नी सेठानी मर्षदाचार्यजी बहुत ही धर्मप्रेमी और कदार हैं। आपके सहाय्यसे यह कार्य शीघ्र ही निर्दिष्ट पूर्ण होगा ऐसी आशा है। आपकी कदारता और धर्मप्रेमकी सहायता करते हुए मैं आपके बहुत २ धन्यवाद देता हूँ।

इस भागके सम्पादन आदिका भार श्री पं. कृष्णचन्द्रजी सिद्धान्तसाक्षीने वहन किया है, मेरा भी धन्यवाद सहयोग रहा है। मैं पंडितजीको भी पत्रार्थ धन्यवाद देता हूँ।

अपने कामकाजसे ही अपभ्रंशका कार्यालय करीके स्व. बा. छेटीछावलीके जिनमन्दिरके नीचेके भागमें स्थित है। और यह सब स्व० बाबू साहबके सुपुत्र बा. मनेवदासजी और सुपुत्र बा० साकिराजजी तथा बा० अण्णमदासजीके सौजन्य और धर्मप्रेमका परिचायक है। अतः मैं आप सबका भी आभारी हूँ।

इस भागका बहुभाग 'बम्बई प्रिंटिंग प्रेस' तथा अन्यके कुछ फर्म 'फिंक्स प्रेस' में छपे हैं। दोनोंके स्वामी तथा कर्मचारी भी इस सहयोगके लिए धन्यवादके पात्र हैं।

अपभ्रंशका कार्यालय  
महैली, काशी  
शीपावली २४८३

}

कैलाशचन्द्र साक्षी  
श्री श्री साहित्य विमलता  
या हि. कैलाश, मद्रास




## विषय-परिचय

प्रस्तुत अधिकारका नाम स्थितिविभक्ति है । कर्मका बन्ध होनेपर जितने काल तक उसका कर्मरूपसे अवस्थान रहता है उसे स्थिति कहते हैं । स्थिति दो प्रकार की होती है—एक बन्धके समय प्राप्त होनेवाली स्थिति और दूसरी सक्रमण, स्थितिकाण्डकषात और अपभ्रंशस्थितिगलना आदि होकर प्राप्त होनेवाली स्थिति । केवल बन्धसे प्राप्त होनेवाली स्थितिका विचार महाबन्धमें किया है । मात्र उसका यहाँपर विचार नहीं किया गया है । यहाँ तो बन्धके समय जो स्थिति प्राप्त होती है उसका भी विचार किया गया है और बन्धके बाद अन्य कारणोंसे जो स्थिति प्राप्त होती है या शेष रहती है उसका भी विचार किया गया है । मोहनीय कर्मकी उत्तर प्रकृतियाँ अष्टाईस हैं । एक बार इन भेदोंका आश्रय लिए बिना और दूसरी बार इन भेदोंका आश्रय लेकर प्रस्तुत अधिकारमें विविध अनुयोगद्वारोंका आश्रय लेकर स्थितिका सागोपांग विचार किया गया है । वे अनुयोगद्वार ये हैं—अद्वान्छेद, सर्वविभक्ति, नोसर्वविभक्ति, उत्कृष्टविभक्ति, अनुत्कृष्टविभक्ति, जघन्य-विभक्ति, अजघन्यविभक्ति, सादिविभक्ति, अनादिविभक्ति, ध्रुवविभक्ति, अध्रुवविभक्ति, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, सन्निकर्ष भाव और अल्पबहुत्व । मूलप्रकृति स्थितिविभक्ति एक है, इसलिए उसमें सन्निकर्ष अनुयोगद्वार सम्भव नहीं है, इसलिए इस अधिकारकी उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा ही जानना चाहिए ।

अद्वाच्छेद—अद्वा शब्द स्थितिके अर्थमें कालवाची है। तदनुसार अद्वाच्छेदका अर्थ कालविभाग होता है। यह ब्रह्म और उत्कृष्ट भेदसे दो प्रकारका है। मोहनीय सामान्यका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण होता है यह विदित है, इसलिए मोहनीय सामान्यका उत्कृष्ट अद्वाच्छेद उक्तप्रमाण कहा है। इसमें सात हजार वर्ष आबाधाकालके भी सम्मिलित हैं, क्योंकि ऐसा नियम है कि कर्मका बन्ध होते समय स्थितिबन्धके अनुसार उसकी आबाधा पड़ती है। यदि अन्त कोड़ाकोड़ी सागरके भीतर स्थितिबन्ध होता है तो अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा पड़ती है और सौ कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिबन्ध होता है तो सौ वर्षप्रमाण आबाधा पड़ती है। आगे इसी अनुपातसे आबाधाकाल बढ़ता जाता है, इसलिए सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिबन्धके होने पर उसका आबाधाकाल सात हजार वर्षप्रमाण बतलाया है। विशेष खुलासा इस प्रकार है—किसी भी कर्मका बन्ध होने पर वह अपनी स्थितिके सब समयोंमें विभाजित हो जाता है। मात्र बन्ध समयसे लेकर प्रारम्भके कुछ समय ऐसे होते हैं जिनमें कर्मपुञ्ज नहीं प्राप्त होता। जिन समयोंमें कर्मपुञ्ज नहीं प्राप्त होता उन्हें आबाधा काल कहते हैं। इस आबाधाकालको छोड़कर स्थितिके शेष समयोंमें उत्तरोत्तर विशेष हीन क्रमसे कर्मपुञ्ज विभाजित होकर मिलता है। उदाहरणार्थ मोहनीयकर्मका सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिबन्ध होने पर बन्ध समयसे लेकर सात हजार वर्ष तक सब समय खाली रहते हैं। उसके बाद अगले समयसे लेकर सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर तकके कालके नितने समय होते हैं, विवक्षित मोहनीयकर्मके उतने विभाग होकर सात हजार वर्षके बाद, प्रथम समयके बटवारेमें जो भाग आता है वह सबसे बड़ा होता है, उससे अगले समयके बटवारेमें जो भाग आता है वह उससे कुछ हीन होता है। इसी प्रकार सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरके अन्तिम समय तक जानना चाहिए। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि यहाँ पर मोहनीयकी जो उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर कही है वह सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरके अन्तिम समयके बटवारेमें प्राप्त होनेवाले द्रव्यकी अपेक्षासे कही है। वस्तुतः आबाधाकालके बाद जिस समयके बटवारेमें जो द्रव्य आता है उसकी उतनी ही स्थिति जाननी चाहिए। स्थितिके अनुसार बटवारेका यह क्रम सर्वत्र जानना चाहिए। इस प्रकार मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट अद्वाच्छेदका विचार किया। मोहनीय-कर्मका ब्रह्म अद्वाच्छेद एक समयप्रमाण है। यह क्षपक सूक्ष्मसाम्प्रदायिक जीवके अन्तिम समयमें सूक्ष्म-लोभकी उदयस्थितिके समय प्राप्त होता है। मोहनीयकी उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अद्वाच्छेद मोहनीय सामान्यके समान सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका

[illegible]



जघन्य-अजघन्यविभक्ति—सबसे जघन्य स्थिति जघन्य स्थिति-विभक्ति है और उससे अधिक स्थिति अजघन्य स्थिति-विभक्ति है। मूल और उत्तर प्रकृतियों में इस धीजघन्यके अनुसार घटित कर लेना चाहिए।

सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवविभक्ति—सामान्यसे मोहनीयकी जघन्य स्थिति क्षणिक यूसुसाम्परायिक जीवके अन्तिम समयमें होती है, अतः जघन्य स्थिति-विभक्ति सादि और अध्रुव है। इसके पूर्व अजघन्य स्थिति-विभक्ति होती है, इसलिए यह अनादि तो है ही। साथ ही यह अभव्यो की अपेक्षा ध्रुव और अभव्यो की अपेक्षा अध्रुव भी है। तथा उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थिति-विभक्ति कदाचित्क होती है इसलिए ये सादि और अध्रुव हैं। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंके विषयमें इसीप्रकार जानना चाहिए। अर्थात् इसकी उत्कृष्ट, अनुकृष्ट और जघन्य स्थिति-विभक्ति सादि और अध्रुव होती है। तथा अजघन्य स्थिति-विभक्ति सादि विस्त्वको छोड़कर तीन प्रकारकी होती है। कारण स्वष्ट है। सम्पत्त्व और सम्पत्तिमिथ्यात्व ये दो प्रकृतियों ही सादि हैं, इसलिए इनकी उत्कृष्ट, अनुकृष्ट, जघन्य और अजघन्य ये चारों स्थिति-विभक्तियाँ सादि और अध्रुव होती हैं। अब रती अनन्तानुबन्धीचतुष्क सो इसकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थिति-विभक्तियाँ कदाचित्क होनेसे सादि और अध्रुव हैं। तथा जघन्य स्थिति-विभक्ति विसंयोगनाके बाद इसकी संयोजना होनेके प्रथम समयमें ही होती है, इसलिए यह भी सादि और अध्रुव है। किन्तु अजघन्य स्थिति-विभक्ति विसंयोगनाके पूर्व अनादिसे रहती है तथा विसंयोगना के बाद पुनः संयोजना होनेपर भी होती है, इसलिए तो यह अनादि और सादि है। तथा अभव्योकी अपेक्षा ध्रुव और अभव्योकी अपेक्षा अध्रुव भी है। इसप्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अजघन्य स्थिति-विभक्ति सादि आदिके भेदसे चारों प्रकारकी है। यह ओष प्ररूपणा है। मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषताकी जानकर योजना करनी चाहिए।

स्वामित्व—सामान्यसे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव उत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिका स्वामी है। अवान्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व और सोलह कषायोंके विषयमें इसी प्रकार स्वामित्व जानना चाहिए। यद्यपि यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके द्वितीयादि छमनोंमें अनुकृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवालेके उत्कृष्ट स्थितिका एक भी निषेक नहीं गबता, इसलिए केवल बन्धके समय उत्कृष्ट स्थिति न मानकर अन्य समयोंमें भी उत्कृष्ट स्थिति मानी जानी चाहिए पर यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थिति कालप्रधान होती है और द्वितीयादि समयोंमें अध स्थिति गहनाके प्राय एक एक समय कम होता जाता है, इसलिए उत्कृष्ट स्थिति-बन्धके समय ही उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति मानी गई है। सम्पत्त्व और सम्पत्तिमिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिका ऐसा प्रथम समयवर्ती वेदकसम्पत्ति जीव स्वामी है जिसने मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कर अन्तर्मुहूर्तमें वेदकसम्पत्त्व प्राप्त किया है। तथा कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बंधकर जो एक आवलिखालके बाद उसे नौ नोकषायोंमें संक्रान्त कर रहा है वह नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिका स्वामी है। सामान्यसे मोहनीयकी जघन्य स्थिति-विभक्ति क्षणिक यूसुसाम्परायिके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए वह इसका स्वामी है। उत्तर-प्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी क्षणिक करनेवाला जीव उसकी क्षणिक के अन्तिम समयमें उसकी जघन्य स्थिति-विभक्तिका स्वामी है। इसी प्रकार सम्पत्त्व, सम्पत्तिमिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायकी जघन्य स्थिति-विभक्तिका स्वामी अपनी अपनी क्षणिक के अन्तिम समयवर्ती जीवको जानना चाहिए। मास सम्पत्तिमिथ्यात्वका यह जघन्य स्वामित्व अपनी उद्वेगनाके अन्तिम समयमें भी बन जाता है। तथा तीन वेदकी जघन्य स्थिति-विभक्तिका स्वामी स्वोदयसे क्षणिकपेणि पर चढ़ा हुआ अन्तिम समयवर्ती जीव है। यह ओषसे स्वामित्व कहा है। मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषता जानकर यह स्वामित्व घटित कर लेना चाहिए। जहाँ गिन प्रकृतियोंकी क्षणिक सम्भव हो वहाँ उसका विचार कर और जहाँ क्षणिक सम्भव न हो वहाँ अन्य प्रकारसे जघन्य स्वामित्व घटित करना चाहिए। तथा उत्कृष्ट स्वामित्वमें भी अपनी अपनी विशेषताकी जानकर यह ठे आना चाहिए।





**भगविचय**—जो उत्कृष्ट स्थितिवाले होते हैं वे अनुत्कृष्ट स्थितिवाले नहीं होते और जो अनुत्कृष्ट स्थितिवाले होते हैं वे उत्कृष्ट स्थितिवाले नहीं होते । इसी प्रकार नयन्य और अक्षयन्य स्थितिकी अपेक्षा

**भगविचय**—जो उत्कृष्ट स्थितिवाले होते हैं वे अनुत्कृष्ट स्थितिवाले नहीं होते और जो अनुत्कृष्ट स्थितिवाले होते हैं वे उत्कृष्ट स्थितिवाले नहीं होते। इसी प्रकार नयन्य और अक्षयन्य स्थितिकी अपेक्षा



वालोका यह स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ घटे चौदह भागप्रमाण है । तथा अन्य आचार्यों के अभिप्रायसे यह त्रसनालीके कुछ कम बारह घटे चौदह भागप्रमाण है । कारणका निर्देश ' छ ३६८ के विशेषार्थमें किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति चेटकमस्यक्त्वकी प्रातिके प्रथम समयमें सम्भव है और ऐसे जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ घटे चौदह भागप्रमाण है, इसलिए यह स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है । इस अपेक्षासे वर्तमान स्पर्शन लोकके असम्ख्यातमें भागप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका उत्कृष्टके समान स्पर्शन तो बन ही जाता है । साथ ही मारणान्तिक और उपपादकी अपेक्षा सर्वलोक प्रमाण स्पर्शन भी बन जाता है इसलिए यह उक्तप्रमाण कहा है । मोहनीयकी जघन्य स्थिति क्षपकश्रेणिमें प्राप्त होती है, इसलिए इसकी जघन्य स्थितिवालोंका लोकके असम्ख्यात भागप्रमाण स्पर्शन है और मोहनीयकी सत्तावाले जीव सर्व लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इसकी अजघन्य स्थितिवालोंका सर्वलोक प्रमाण स्पर्शन कहा है । उत्तर प्रकृतियोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय और नी नोकपायोंकी अपेक्षा इसी प्रधान स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्शन अपने अनुत्कृष्टके समान है यह स्पष्ट ही है । तथा सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्शन अनुत्कृष्टके समान है यह भी स्पष्ट है । अनन्तानुबन्धीचतुष्पत्ती जघन्य स्थिति देवोंके विहारादिके समय भी सम्भव है इसलिए इसवाले जीवोंका स्पर्शन वर्तमानकी अपेक्षा लोकके असम्ख्यातमें भागप्रमाण और अतीतकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम आठ घटे चौदह भागप्रमाण कहा है । इनके अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्शन सर्वलोकप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । गति आदि मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषताको जानकर इसी प्रकार स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए ।

काल—नाना जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय बन्ध करके दूसरे समयमें न करें यह सम्भव है और अधिकसे अधिक पल्पने असख्यातवें भागप्रमाण काल तक फरते रहें यह भी सम्भव है, इसलिए मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्पके असख्यातवें भाग प्रमाण कहा है। तथा इसकी अनुत्कृष्ट स्थितिका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। मोहनीयकी छन्नीस उत्तर-प्रकृतियोंकी अपेक्षा यह काल इसी प्रकार जानना चाहिए। मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिश्थात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि मोहनीय-की उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक आवलिके असख्यातवें भागप्रमाण काल तक वेदकसम्यक्त्वकी प्राप्ति होते हैं। तथा इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। मोहनीयकी जघन्य स्थितिवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सख्यात समय है, क्योंकि क्षपकश्रेणिकी प्राप्ति का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सख्यात समय है। तथा इसकी अनजघन्य स्थितिवालोंका काल सर्वदा है। मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, वारह कपाय और तान वेदवाले जीवोंका यह काल इसी प्रकार है। सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क की जघन्य स्थितिवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असख्यातवें भागप्रमाण है। कारण स्पष्ट है। इनकी अनजघन्य स्थितिवालोंका काल सर्वदा है। छह नोकप्रायोंकी जघन्य स्थितिवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि एक स्थितिका षष्ठकपातमें इतना काल लगता है और उत्कृष्ट काल सर्वदा है। गति आदि मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषता जानकर यह काल ध्येय कर लेना चाहिए।

अन्तर—मोहनीय सामान्य और अद्वैत उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय है, क्योंकि एक समयके अन्तरसे उत्कृष्ट स्थितिकी प्राप्ति सम्भव है और उत्कृष्ट अन्तर श्रगुलके असंख्यातत्वं भागप्रमाण है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिवन्धके बाद उसका पुन बन्ध होनेमें अधिकसे अधिक इतना अन्तरकाल प्राप्त होता है। इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका अन्तरकाल नहीं है यह स्पष्ट ही है। मोहनीयकी जघन्य स्थितिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। अबबन्य स्थितिवालोंका अन्तरकाल नहीं है। मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आठ कषाय और छह नोकषायोंकी अपेक्षा यह अन्तरकाल इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थिति



ध्यात्वकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है जो अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर एक स्थिति तक होती है। मात्र इनकी अन्तिम जघन्य स्थितिकाण्डकी अन्तिम फालिको इन सन्निकर्ष विकल्पामसे कम कर देना चाहिए। सोलह कपायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट स्थिति होती है जो अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर एक आवलि कम तक होती है। पुरुषवेदकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है जो अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर अन्तःकोडाकोडी सागर तक होती है। हास्य और रतिकी स्थिति उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है। स्त्रीवेदके बन्धके समय हास्य और रतिका बन्ध होता है तो उत्कृष्ट होती है, अन्यथा अनुत्कृष्ट होती है जो अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर अन्तःकोडाकोडी सागर तक होती है। अरति और शोककी स्थिति उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है। स्त्रीवेदके बन्धके समय इनका बन्ध होता है तो उत्कृष्ट होती है, अन्यथा अनुत्कृष्ट होती है जो अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पत्यका असख्यातवों भागकम बीस कोडाकोडी सागर तक होती है। नपुंसकवेदकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है जो एक समय कमसे लेकर पत्यका असख्यातवों भाग कम बीस कोडाकोडी सागर तक होती है। भय और जुगुप्साकी स्थिति नियमसे उत्कृष्ट होती है। पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिको मुख्य करके इसी प्रकार सन्निकर्ष जानना चाहिए। हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिको मुख्य करके भी इसी प्रकार सन्निकर्ष जानना चाहिए। मात्र इसके स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कम आदि न होकर अन्तर्मुहूर्त आदि कम होती है। कारणकी जानकारीके लिए पृष्ठ ४७३ देखो।

नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवके मिथ्यावकी स्थिति उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है। अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पत्यके असख्यातवों भागतक कम होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यावकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है, जो अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर एक स्थिति तक होती है। सोलह कपायोंकी स्थिति उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है। अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कमसे लेकर एक आवलि कम तक होती है। स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है जो अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर अन्तःकोडाकोडी सागर तक होती है। हास्य और रतिकी स्थिति उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है जो अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर अन्तःकोडाकोडी सागर तक होती है। अरति और शोककी स्थिति उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है। अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पत्यका असख्यातवों भागकम बीस कोडाकोडी सागर तक होती है। भय और जुगुप्साकी स्थिति नियमसे उत्कृष्ट होती है। इसी प्रकार अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट स्थितिको मुख्य करके सन्निकर्ष जानना चाहिए। यहाँ जो विशेषता है उसे ४८३ पृष्ठसे जान लेनी चाहिए।

मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिवालेके अनन्तानुबन्धीचतुष्कका सत्त्व नहीं होता, क्योंकि दर्शनमोहनीयकी क्षणकाके समय मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति होती है और अनन्तानुबन्धीकी इससे पूर्व विसंयोजना हो जाती है। शेष कर्मों की स्थिति नियमसे अनजघन्य असख्यातगुणी अधिक होती है। सम्यक् वकी जघन्य स्थितिवालेके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचारकी सत्ता नहीं होती। शेष कर्मों की अनजघन्य असख्यातगुणी स्थिति होती है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिवालेके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचारकी सत्ता है भी और नहीं भी है। उद्वेलनाके समयसम्यग्मिथ्या वकी जघन्य स्थितिवाले जीवके सम्यक्त्वकी सत्ता नहीं है शेषकी है और क्षणकाके समय सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिवालेके मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचारकी सत्ता नहीं होती, सम्यक्त्वकी होती है। जब इनकी सत्ता होती है तो इनकी नियमसे अनजघन्य असख्यातगुणी होती है। इन छह प्रकृतियोंके सिवा शेष प्रकृतियोंकी नियमसे अनजघन्य असख्यातगुणी स्थिति होती है।

अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिवालेके मिथ्यात्व आदि सब प्रकृतियोंकी नियमसे अनजघन्य असख्यातगुणी स्थिति होती है। मात्र अनन्तानुबन्धी मान आदि तीनकी जघन्य स्थिति होती है। इसी प्रकार



## विषय-सूची

[illegible]

नव वरचमका काठ	११-१२
१२ सम्मिध्याव	
मरिचा कट्ट	१३-१४
मनुवर काठ का विचार	१४-१५
१ मरहा कट्ट	१५-१६
	१६
मनुवर कट्ट	१६-१७
१७ मरहा मनुवर	१७-१८
मोह का वर	१८-१९
१९	१९
१९ सम्मिध्याव	१९-२०
मनुवर मनुवर	१९-२०
मनुवर मनुवर	२०-२१
मनुवर मनुवर	२१-२२
मनुवर मनुवर	२२-२३
मनुवर मनुवर	२३-२४
मनुवर मनुवर	२४-२५
मनुवर मनुवर	२५-२६
मनुवर मनुवर	२६-२७
मनुवर मनुवर	२७-२८
मनुवर मनुवर	२८-२९
मनुवर मनुवर	२९-३०
मनुवर मनुवर	३०-३१
मनुवर मनुवर	३१-३२
मनुवर मनुवर	३२-३३
मनुवर मनुवर	३३-३४
मनुवर मनुवर	३४-३५
मनुवर मनुवर	३५-३६
मनुवर मनुवर	३६-३७
मनुवर मनुवर	३७-३८
मनुवर मनुवर	३८-३९
मनुवर मनुवर	३९-४०
मनुवर मनुवर	४०-४१
मनुवर मनुवर	४१-४२
मनुवर मनुवर	४२-४३
मनुवर मनुवर	४३-४४
मनुवर मनुवर	४४-४५
मनुवर मनुवर	४५-४६
मनुवर मनुवर	४६-४७
मनुवर मनुवर	४७-४८
मनुवर मनुवर	४८-४९
मनुवर मनुवर	४९-५०
मनुवर मनुवर	५०-५१
मनुवर मनुवर	५१-५२
मनुवर मनुवर	५२-५३
मनुवर मनुवर	५३-५४
मनुवर मनुवर	५४-५५
मनुवर मनुवर	५५-५६
मनुवर मनुवर	५६-५७
मनुवर मनुवर	५७-५८
मनुवर मनुवर	५८-५९
मनुवर मनुवर	५९-६०
मनुवर मनुवर	६०-६१
मनुवर मनुवर	६१-६२
मनुवर मनुवर	६२-६३
मनुवर मनुवर	६३-६४
मनुवर मनुवर	६४-६५
मनुवर मनुवर	६५-६६
मनुवर मनुवर	६६-६७
मनुवर मनुवर	६७-६८
मनुवर मनुवर	६८-६९
मनुवर मनुवर	६९-७०
मनुवर मनुवर	७०-७१
मनुवर मनुवर	७१-७२
मनुवर मनुवर	७२-७३
मनुवर मनुवर	७३-७४
मनुवर मनुवर	७४-७५
मनुवर मनुवर	७५-७६
मनुवर मनुवर	७६-७७
मनुवर मनुवर	७७-७८
मनुवर मनुवर	७८-७९
मनुवर मनुवर	७९-८०
मनुवर मनुवर	८०-८१
मनुवर मनुवर	८१-८२
मनुवर मनुवर	८२-८३
मनुवर मनुवर	८३-८४
मनुवर मनुवर	८४-८५
मनुवर मनुवर	८५-८६
मनुवर मनुवर	८६-८७
मनुवर मनुवर	८७-८८
मनुवर मनुवर	८८-८९
मनुवर मनुवर	८९-९०
मनुवर मनुवर	९०-९१
मनुवर मनुवर	९१-९२
मनुवर मनुवर	९२-९३
मनुवर मनुवर	९३-९४
मनुवर मनुवर	९४-९५
मनुवर मनुवर	९५-९६
मनुवर मनुवर	९६-९७
मनुवर मनुवर	९७-९८
मनुवर मनुवर	९८-९९
मनुवर मनुवर	९९-१००

मिध्यात्व	९९-१००	स्वाग्रहानिग्रहपणा	११४-११५
बारह कपाय और मी नोकपाय	९९	मिध्यात्वकी कितनी हदियां और कितनी	
सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व	९९-१०२	हानियां होती हैं इसका निर्दिष्ट	११०-१११
अनवगतुल्यता चतुष्टय	१०२	क्षेप कर्मोंकी हदियां और हानियां	१११-११२
व्यारणाके अनुसार अल्पबहुत्व	१०२-१०५	व्यारणाके अनुसार समुत्कीर्तना	११२-११३
प्रतिष्ठा	१०५	" " स्वामित्व	११३-११४
हीन अनुयोगप्रारंभके नाम	१०५-१०६	एक बीजकी अपेक्षा काष्ठ	११४-११५
व्यारणाके अनुसार समुत्कीर्तना	१०६	मिध्यात्व	११५-११६
कट्ट	१०६	महात्म्य और कपायमाहृत्य	
अधम्य	१०६	मनुवेष्टा निर्दिष्ट	११६
व्यारणाके अनुसार स्वामित्व	१०७-११०	क्षेप कर्म	११६
कट्ट	१०७-१०९	व्यारणाके अनुसार काष्ठ	११६-११७
अधम्य	१०९-११०	एक बीजकी अपेक्षा अल्प	११७-११८
कट्ट अल्पबहुत्व	११०-१११	मिध्यात्व	११८-११९
मिध्यात्व	११०-१११	क्षेप कर्म	११९
सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके		व्यारणाके अनुसार अल्प	११९-१२०
अतिरिक्त क्षेप कर्म	१११	" " संगच्छिय	१२०-१२१
मनुसंक्षेप, अरवि, शोक, अय		" " सागाभावा	१२१-१२२
और सुगुण्या	१११-११२	" " परिभाष	१२२-१२३
सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व	११२-११३	" " क्षेत्र	१२३
व्यारणाके अनुसार कट्ट	११३-११४	" " स्वस्थ	१२३-१२४
अल्पबहुत्व	११४-११५	" " कष्ट	१२४-१२५
अधम्य अल्पबहुत्व	११५-११६	" " अल्प	१२५-१२६
व्यारणाके अनुसार अधम्य	११६-११७	" " भाव	१२६
अल्पबहुत्व	११७-११८	अल्पबहुत्व	१२६-१२७
हृदिके १३ अनुयोगप्रारंभ	११८-११९	मिध्यात्व	१२७-१२८
प्रतिष्ठा	११९	बारह कपाय और मी नोकपाय	१२८-१२९
हृदिके दो भेद और वनका विचार	११९-१२०	सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व	१२९-१३०
स्वत्वाभुद्वि	१२०-१२१	अनवगतुल्यताचतुष्टय	१३०-१३१
परत्वाभुद्वि	१२१	व्यारणाके अनुसार अल्पबहुत्व	१३१-१३२
स्वत्वाभुद्विकी मितवर हृदिका		स्वित्तिसत्कर्मस्वान	१३२-१३३
कमान	१२१-१२२	स्वित्तिसत्कर्मस्वानकी दो अधिकार	१३३
परत्वाभुद्वि	१२२-१२३	प्रत्युपा	१३३-१३४
		अल्पबहुत्व	१३४-१३५





कसायपाहुडस्स  
ट्टि दि वि ह त्ती  
तदियो अत्थाहियारो

भाषा सं. श्री  
लात

\* जे  
३१.  
ति मणिद  
न उपपन्नदि

\* अत्र  
अवपद कहेते  
३१.

यह इतका ५५

मान सुतपूर्वक  
छिये मनके



श्री माधव जीनयन ज्ञान मन्दिर, जयपुर

सिरि-अवतारहरियविरह्या-मुष्णितसमन्वितं

सिरि-भगवन्तगुणहरमहारमोवहृष्टं

**क सा य पा हु डं**

कस्त

सिरि-वीरसेणाहरियविरह्या टीका

**जयधवला**

कस्त

उत्तरपयस्त्रिदिनिहरी नाम विरिचो अल्पादिपारो

० जे सुजगार-अप्यवर-अवहृष्ट-अवचरुष्या लेसिमहपदं ।

१ किमहृष्टं नाम ? सुजगार-अप्यवर अवहृष्टावचरुष्यात् सकर्षं च परवैमि  
पि यमिदं होमि । तं किमहृष्टं बुधदे । अजगपयस्त्रिदिनिहरी सुजगारविचो होहो सुहृष्ट  
न उप्यस्मदि पि उदुप्यापयहृष्टं बुधदे ।

० नव सो सुजगार, अप्यवर, अवहृष्ट और अवचरुष्य पद हैं उनका  
वर्णन करते हैं ।

१ शंका—यहाँ अवर्षण से क्या तात्पर्य है ?

समाधान—सुजगार अप्यवर, अवहृष्ट और अवचरुष्य को स्वल्प है कहे करते हैं  
नव इसका तात्पर्य है ।

शंका—सुजगार भाषिका स्वल्प किस्मिने करते हैं ?

समाधान—किन्हीं सुजगार भाषि चारोंका स्वल्प नहीं नामा है कहे सुजगार विषयक  
भाव सुकर्षक नहीं बनना होता है, नव सुजगारवि विषयक ज्ञानके सुकर्षक बनाने करते  
किने कने स्वल्पका कथन करते हैं ।

\* जत्तियाओ अस्सि समए द्विदिविहत्तीओ उस्सक्काविदे अणंतर-विदिक्कंते समए अप्पदराओ बहुदरविहत्तिओ एसो भुजगारविहत्तिओ ।

२. 'अस्सि' समए अस्मिन् वर्तमानसमये 'जत्तियाओ' यावन्त्यः 'द्विदिविहत्तीओ' स्थितिबिभक्तयः स्थितिविकल्पाः इति यावत् । 'उस्सक्काविदे' तादृक्कर्षितासु वद्धितासु इत्यर्थः । 'अणंतरविदिक्कंते समए' अनन्तरव्यतिक्रान्ते समये । अप्पदराओ अल्पतराः स्थितयो यदि भवन्ति । बहुदरविहत्तिओ स बहुतरस्थितिविकल्पो जीवः । एसो भुजगारविहत्तिओ । स एष जीवो भुजगारविभक्तिः । अणंतरादीद्विदीर्हितो यदि बहुमाणसमए बहुआओ द्विदीओ बंधदि तो भुजगारविहत्तिओ चि भणिदं होदि ।

\* ओसक्काविदे बहुदराओ विहत्तीओ एसो अप्पदरविहत्तिओ ।

§ ३. 'बहुदराओ विहत्तीओ' अनन्तरव्यतिक्रान्ते समये बहुस्थितिविकल्पेषु व्यवस्थितेषु 'ओसक्काविदे' वर्तमानसमये स्थितिकाण्डघातेन अधःस्थितिगलनेन वा अपकर्षितेषु । एसो अप्पदरविहत्तिओ एषः अल्पतरविभक्तिः ।

\* ओसक्काविदे [ उस्सक्काविदे वा ] तत्तियाओ चेव विहत्तीओ एसो अवद्विदिविहत्तिओ ।

§ ४. ओसक्काविदे उस्सक्काविदे वा यदि तत्तियाओ तत्तियाओ चेव द्विदिविहत्तीओ

\* इस समयमें जितनी स्थितिविभक्तियाँ हैं उनके, अनन्तर व्यतीत हुए समयमें अल्पतर स्थितिविभक्तियोंको उत्कर्षित करके, बांधने पर वह बहुतरविभक्तिवाला जीव भुजगारस्थितिविभक्तिवाला होता है ।

§ २ 'अस्सि समए' का अर्थ 'इस वर्तमान समयमें' है । 'जत्तियाओ' का अर्थ 'जितनी' है । 'द्विदिविहत्तीओ' का अर्थ स्थितिविभक्तियों अर्थात् स्थितिविकल्प है । 'उस्सक्काविदे' का अर्थ 'उनके उत्कर्षित करने पर अर्थात् बढ़ाने पर' है । 'अणंतरविदिक्कंते समए' का अर्थ 'अनन्तर व्यतीत हुए समयमें' है । 'अप्पदराओ' अर्थात् 'अल्पतर स्थितियाँ' यदि होती हैं । तो वह बहुदरविहत्तिओ' अर्थात् 'बहुत स्थितिविकल्पवाला जीव' है । 'एसो भुजगारविहत्तिओ' अर्थात् यह भुजगारविभक्तिवाला जीव है । इसका यह तात्पर्य है कि अनन्तर अतीत समयसे यदि वर्तमान समयमें जीव बहुत स्थितियोंका बन्ध करता है तो वह भुजगारविभक्तिवाला कहा जाता है ।

\* जो अनन्तर अतीत समयमें बहुतर स्थितिविभक्तियोंमें रहकर पुनः उन्हें अपकर्षित करके इस वर्तमान समयमें अल्पतर स्थितिविभक्तियोंको प्राप्त होगया वह जीव अल्पतर स्थितिविभक्तिवाला होता है ।

§ ३ 'बहुदराओ विहत्तीओ' अर्थात् जो अनन्तर अतीत हुए समयमें बहुत स्थितिविकल्पोंमें रहा वह जब 'ओसक्काविदे' अर्थात् इस वर्तमान समयमें स्थितिकाण्डघात या अधःस्थितिगलनाके द्वारा बहुत स्थितियोंको घटाकर अल्पतर स्थितिविभक्ति कर देता है तब वह जीव अल्पतर स्थितिविभक्तिवाला होता है ।

\* अपकर्षित करने पर या उत्कर्षित करने पर यदि उतनी ही स्थितियाँ रहें तो वह जीव अवस्थितविभक्तिवाला होता है ।

§ ४. अपकर्षित करने पर या उत्कर्षित करने पर यदि स्थितिविभक्तिके कारण उतनी ही स्थिति-

[ २२ ]

११. २१०

# १

§ ४.

रोहि विहत्ती

११. २१०

वसा ते

# एदेण

§ ६.

§ ७.

विभक्तियाँ हो

होता है ।

# बो

§ ५

विभक्तिवाला

अवस्थानका

और अवस्थान

विना पाया जान

विकल्प है

होता है ।

शब्दके द्वारा भी

इसके अनुसार

अल्प स्थिति है

करता है तो वह

अधिक स्थिति

स्थिति कर लेता

स्थितिकी

स्थिति बनी

निःसत्त्वकमवाला

कहा जाता है ।

विचार किया

# इस

§ ६

§ ७

उत्सृज्य विरे अर्धम  
 उज्जगरविहिताम् ।  
 'पारत्या द्विविधोप  
 क्रमिगुणप्रतिष्ठान्तरे  
 । अन्तरा विरे वि  
 । एते द्वयवस्थितिम् ।  
 वि स्मृत्यवस्थितिम् ।  
 पदविहिताम् ।  
 द्विविधविहिताम् अन्तरा  
 निमित्तम् वा अर्धम ।

ने च विहिताम् एते  
 विहिताम् के द्विविधविहिताम्  
 अन्तरा अन्तरा द्विविधविहिताम्  
 एते द्विविधविहिताम्

अन्तरा अन्तरा द्विविधविहिताम्  
 एते द्विविधविहिताम्  
 अन्तरा अन्तरा द्विविधविहिताम्  
 एते द्विविधविहिताम्

एते द्विविधविहिताम्  
 अन्तरा अन्तरा द्विविधविहिताम्  
 एते द्विविधविहिताम्  
 अन्तरा अन्तरा द्विविधविहिताम्

द्विविधविहिताम् एते एते द्विविधविहिताम्

१ अन्तरा द्विविधविहिताम् एते अन्तरा द्विविधविहिताम्

२ अन्तरा द्विविधविहिताम् एते अन्तरा द्विविधविहिताम्  
 द्विविधविहिताम् एते द्विविधविहिताम्  
 अन्तरा अन्तरा द्विविधविहिताम्  
 एते द्विविधविहिताम्

३ एते द्विविधविहिताम्

४ एते द्विविधविहिताम् एते द्विविधविहिताम्

५ एते द्विविधविहिताम् एते द्विविधविहिताम्

विहिताम् एते द्विविधविहिताम्

६ एते द्विविधविहिताम् एते द्विविधविहिताम्

७ एते द्विविधविहिताम् एते द्विविधविहिताम्  
 द्विविधविहिताम् एते द्विविधविहिताम्  
 अन्तरा अन्तरा द्विविधविहिताम्  
 एते द्विविधविहिताम्

विहिताम्—एते द्विविधविहिताम्  
 द्विविधविहिताम् एते द्विविधविहिताम्  
 अन्तरा अन्तरा द्विविधविहिताम्  
 एते द्विविधविहिताम्

८ एते द्विविधविहिताम्

९ एते द्विविधविहिताम् एते द्विविधविहिताम्

१० एते द्विविधविहिताम् एते द्विविधविहिताम्

द्वाराणि णादव्वाणि भवन्ति-समुक्चित्ता सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ  
भागभागं परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं भावो अप्पावहुए त्ति । समुक्चित्ताणुगमेण  
दुविहो णिहेसो-ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-बारसक-णवणोक-अत्थि  
भुजगार-अप्पदर-अवट्टिदविहत्तिया । सम्मत्त सम्मामि० अणंताणु०चउक्काणमेवं चेव ।  
णवरि अत्थि अवत्तव्वं पि । एवं सव्वणेरइय-तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरि०पञ्ज०  
पंचिदियतिरिक्खजोणिणी-मणुसतिय-देव० भवणादि जाव सहस्रार०-पंचिदिय-पंचि०-  
पञ्ज०-तस-तसपञ्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-वेउव्विय०-तिग्णिवेद-  
चचारिक०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०भवसि०-सण्णि-आहारि त्ति ।

§ ८. पंचि०तिरिक्खअपञ्जत्त० छव्वीसं पयड्डीणमोघं । सम्मत्त-सम्मामि० अत्थि  
अप्पदरं चेव । अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्वं णत्थि । एवं मणुसअपञ्ज० सव्वएइदिय-  
सव्वविगल्लिदिय-पंचि०अपञ्ज०-सव्वपंचकाय०-तसअपञ्जत्त-ओरालियमिस्स०-वेउव्विय-  
मि०-कम्मइय०मदि-सुद०-विहंग०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति ।

भुजगार स्थितिबिभक्तिमें तेरह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं—समुक्तीर्तना, स्वामित्व, काल, अन्तर,  
नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और  
अल्पबहुत्व । उनमेंसे समुक्तीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और  
आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार,  
अल्पतर और अवस्थितविभक्तियोंके धारक जीव हैं । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी-  
चतुष्कका कथन इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनका अवक्तव्य भग भी है ।  
इसी प्रकार सब नारकी, सामान्य तिर्यच, पचेन्द्रियतिर्यच, पचेन्द्रियतिर्यचपर्याप्त, पचेन्द्रियतिर्यच-  
योनिमती, सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यिनी, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार-  
स्वर्गतकके देव, पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी,  
काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले,  
असयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि पाँच लेश्यावाले, भव्य, सही और आहारक जीवोंके  
जानना चाहिए ।

**विशेषार्थ**—मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषाय इनका क्षय हो जाने के पश्चात् पुनः  
इनकी उत्पत्ति नहीं होती, अतः इनकी स्थितिमें ओघसे भुजगार अल्पतर और अवस्थित ये तीन  
विभक्तियों ही बनती हैं । किन्तु अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना हो जानेके पश्चात् पुनः  
उत्पत्ति सम्भव है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना हो जानेपर भी उनका सत्त्व  
पुनः प्राप्त हो जाता है, अतः इन छह प्रकृतियोंमें ओघसे भुजगार आदि चारों विभक्तियाँ बन जाती  
हैं । मूल में जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें ओघके समान व्यवस्था बन जाती है, अतः उनकी  
प्ररूपणाको ओघके समान कहा है ।

§ ८ पचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें छव्वीस प्रकृतियोंका भग ओघके समान है ।  
किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अल्पतर ही है और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अवक्तव्य  
नहीं है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्त, सब  
पाँचों स्थावरकाय, त्रस अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाय-  
योगी, भृत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असज्ञा और अनाहारक जीवोंके जानना ।





\* सामित्त । मिच्छत्तस्स भुजगार-अप्पदर-अवट्टिदविहत्तिओ को होदि ?

§ १० सुगममेदं पृच्छासुत्तं ।

\* अण्णदरो ऐरइयो तिरिक्खो मणुस्सो देवो वा ।

§ ११. भुज० अवट्टिद० मिच्छाहट्टिस्सेव । अप्पद० सम्मादिट्टिस्स मिच्छादिट्टिस्स वा ।

\* अवत्तव्वओ णत्थि ।

§ १२. मिच्छत्तसंतकम्मे णिस्संतभावमुवगए पुणो तस्संतकम्मस्सुप्पत्तीए भवावादो ।

सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया है वे मिथ्यादृष्टि भी हो सकते हैं । अब यदि किसी सम्यग्दृष्टि देवने अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना की और वह कालान्तरमें मिथ्यादृष्टि हो गया हो तो उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अवक्तव्य भग प्राप्त हो जाता है और शेष देवोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अल्पतर भग रहता है । तथा यहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना भी होती है, अतः इन दोनों प्रकृतियोंके ओषके समान भुजगार आदि चारों भग बन जाते हैं । इस प्रकार शुक्लेश्यामें जानना चाहिये । तथा अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके सब प्रकृतियोंकी स्थितिमें वृद्धि नहीं होती, अतः सब प्रकृतियोंकी स्थितिका एक अल्पतर भग ही है । इसी प्रकार मूलमें और जितनी मार्गणाए गिनाई हैं उनमें भी जानना चाहिये । जिस जीवने अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना की है वह सासादनमें भी जाता है और ऐसे जीवके सासादनके प्रथम समयमें ही अनन्तानुबन्धीका सत्त्व हो जाता है पर यहाँ सासादनगुणस्थानसे पूर्व अवस्थाका विचार सम्भव नहीं है, अतः सासादनमें अवक्तव्य नहीं होता । इसी कारण सासादनमें भी अनन्तानुबन्धी चतुष्कका एक अल्पतर भग कहा है । अभव्योंके छत्वीस प्रकृतियोंका ही सत्त्व होता है और उनके उन सब प्रकृतियोंकी स्थितियोंमें वृद्धि, ह्रास और अवस्थान सम्भव है, अतः उनके छत्वीस प्रकृतियोंके तीन भग कहे ।

इस प्रकार समुत्कीर्तनानुगम समाप्त हुआ ।

\* स्वामित्व कहते हैं । मिथ्यात्वकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित विभक्तिका स्वामी कौन है ।

१० यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

\* कोई भी नारकी, तिर्यच, मनुष्य और देव मिथ्यात्वकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिका स्वामी है ।

§ ११ भुजगार और अवस्थितविभक्ति मिथ्यादृष्टि के ही होती है तथा अल्पतरविभक्ति सम्यग्दृष्टि के भी होती है और मिथ्यादृष्टि के भी होती है ।

\* मिथ्यात्वका अवक्तव्य भग नहीं है ।

§ १२ क्योंकि मिथ्यात्वसत्कर्मके नि सत्त्वभावको प्राप्त होनेपर पुनः उसकी सत्कर्मरूपसे उत्पत्ति नहीं होती है ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वका बन्ध मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होता है और बन्धके बिना मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थित स्थिति विभक्ति बन नहीं सकती, अतः मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थित स्थिति विभक्ति मिथ्यादृष्टिके ही होती है यह मूलमें कहा है । तथा जो मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अनन्तर उत्तरोत्तर कारणवश उसकी अल्पतर स्थितिका



चरिमसमयमिच्छाहट्टिस्स सम्मत्तणिसेगेहिं तो पढमसमयसम्माहट्टिस्स सम्मत्तणिसेगा एगणिसेगेणम्महिया, मिच्छत्तुदयसरूवेण त्थिवुक्कसंकमेण गच्छमाणसम्मत्तणिसेगस्स सम्माहट्टिपढमसमए गमणाभावादो । तदो णावट्टिदत्तं जुञ्जदि त्ति ? ण एस दोसो, कालं पेक्खिदूण सम्मत्तस्स अवट्टिदत्तुवलं भादो । तं जहा—मिच्छाहट्टिचरिमसमए जत्तिया सम्मत्तट्टिदी तत्तिया चेव सम्माहट्टिपढमसमए वि, अधो एगसमए गलिदम्बणे चेव मिच्छत्तादो सम्मत्तम्मि उवरि एगसमयवट्टिदंसणादो । णिसेगेहि अवट्टिदत्तं जदि हच्छिज्जदि तो वि ण दोसो, कालमस्सिदूण सम्मत्त-मिच्छत्ताणं समाणट्टिदिसंतकम्पिण णिसेगे पडुच्च एगणिसेगेणाहियमिच्छत्तट्टिदिसंतकम्पेण मिच्छादिट्टिणा सम्मत्ते गहिदे चरिमपढमसमयमिच्छादिट्टिसम्मादिट्टीसु णिसेगाणं सरिसत्तुवलं भादो ।

§ १७. सम्मामिच्छत्तस्स पुण हेट्ठा उवरिं च एगणिसेगाहियमिच्छाहट्टिणा सम्मत्ते गहिदे अवट्टिदत्तं होदि, सम्माहट्टिपढमसमयम्मि एगे णिसेगे त्थिवुक्कसंकमेण गदे उवरि एगणिसेगस्स वट्टिदंसणादो । सुत्तकारो पुण पहाणीकयकालो । तं कुदो णव्वदे ? सम्मत्तादो समयुत्तरमिच्छत्तेण सम्मत्ते पट्टिवण्णे सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमकमेण अवट्टिद-भावपरूवणादो ।

सम्यक्त्वका जो स्थितिसत्त्व था, सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें प्राप्त हुआ सम्यक्त्वका स्थितिसत्त्व उसके समान है ।

शुंका—मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयमें जो सम्यक्त्वके निषेक हैं उनसे सम्यग्दृष्टिके पहले समयमें प्राप्त हुए सम्यक्त्वके निषेक एक अधिक हो जाते हैं, क्योंकि मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्वके उदयरूपसे स्तिवुक सक्रमणके द्वारा प्राप्त होनेवाला सम्यक्त्वका निषेक सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें मिथ्यात्वके उदयरूपसे नहीं प्राप्त होता है । अर्थात् मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्वका निषेक स्तिवुक सक्रमणके द्वारा मिथ्यात्वरूप होता रहता है परन्तु सम्यक्त्वके प्राप्त होनेपर वह निषेक मिथ्यात्वरूप नहीं होता और इस प्रकार प्रकृतमें एक निषेककी वृद्धि हो जाती है, अतः सम्यक्त्वप्रकृतिका अवस्थितपना नहीं बनता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि कालकी अपेक्षा सम्यक्त्वका अवस्थितपना बन जाता है । उसका खुलासा इस प्रकार है - मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जितनी स्थिति थी उतनी ही सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें रही, क्योंकि नीचे एक समयके गलनेके समयमें ही मिथ्यात्वसे सम्यक्त्वमें ऊपर एक समयकी वृद्धि देखी जाती है ।

अब यदि निषेकोंकी अपेक्षा अवस्थितपना चाहते हो तो भी दोष नहीं है, क्योंकि कालकी अपेक्षा जिसके सम्यक्त्व और मिथ्यात्वका स्थितिसत्कर्म समान है और निषेकोंकी अपेक्षा जिसके मिथ्यात्वका स्थितिसत्कर्म एक निषेकअधिक है ऐसे किसी एक मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्वके ग्रहण करने पर मिथ्यादृष्टिके अन्तिम और सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें दोनोंके निषेकोंकी समानता पाई जाती है ।

§ १७ सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा तो जिसके नीचे और ऊपर एक निषेक अधिक हो ऐसे मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्वके ग्रहण करने पर अवस्थितपना प्राप्त होता है, क्योंकि सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें एक निषेकके स्तिवुकसक्रमणके द्वारा चले जानेपर ऊपर एक निषेककी वृद्धि देखी जाती है । किन्तु चूर्णिसूत्रकारने तो कालकी प्रधानतासे कथन किया है ।

शुंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि उन्होंने सम्यक्त्व प्रकृतिसे एक समय अधिक स्थितिवाले मिथ्यात्वके

रम्माहिस्स समरदिने  
 १ पणमानसमरदिनेम  
 यि वि । प एव रोणे, एवं  
 निष्ठाहिस्सिपवपर वरिण  
 । एमवपर वरिस्सने वे  
 । निष्ठेपेहि वरिस्सने ही  
 वय सबलविस्सकम्पे  
 निष्ठाहिस्सिप समर वरि  
 व वरिमातो ।

नेमरिस्सिपवपर समर  
 निष्ठेपे निष्ठेपववरेव वरि  
 १ व वरि पवरे । समर  
 मरिस्सिपववरेव वरि

व वरि समरपय विस्सने

विस्सने वरि समरपय वरि  
 निष्ठेपे निष्ठेपववरेव वरि  
 निष्ठेपे निष्ठेपववरेव वरि  
 निष्ठेपे निष्ठेपववरेव वरि  
 निष्ठेपे निष्ठेपववरेव वरि

मरिस्सिपववरेव वरि  
 निष्ठेपे निष्ठेपववरेव वरि  
 निष्ठेपे निष्ठेपववरेव वरि  
 निष्ठेपे निष्ठेपववरेव वरि  
 निष्ठेपे निष्ठेपववरेव वरि

निष्ठेपे निष्ठेपववरेव वरि  
 निष्ठेपे निष्ठेपववरेव वरि  
 निष्ठेपे निष्ठेपववरेव वरि  
 निष्ठेपे निष्ठेपववरेव वरि  
 निष्ठेपे निष्ठेपववरेव वरि

निष्ठेपे निष्ठेपववरेव वरि  
 निष्ठेपे निष्ठेपववरेव वरि  
 निष्ठेपे निष्ठेपववरेव वरि  
 निष्ठेपे निष्ठेपववरेव वरि  
 निष्ठेपे निष्ठेपववरेव वरि

§ १८ किं च यदि विस्सेहि वेव सम्मप-सम्माभिष्ठापयमहिद्विपमिस्सिपवदि  
 तो अंतरकरणं काळम मिष्ठापयमहिद्विपमिस्सिपवदि विस्सिपवदिपदि  
 सतकम्पस सतसमसम्माहिस्सिप वि अविस्सिप हीदि, तस्य दसममोहिस्सेमात्र गळम-  
 मावादे । य च अविस्सिपवदिपय पय अविस्सिपवदिपवो पवविदे । तदो वाणिज्य अहा  
 अविस्सिपवदिपयो पयपुदो पहापोकपकाको पि । कुपीप वि एसो वेव अरवो  
 कुवरो, कम्पकम्पय कम्पवावेवावहवस कम्पविदिपवो । य च कम्पकम्पवो हिदि,  
 पयवि हिदि-अधुमागापयसस हिदिपविरोवादे ।

॥ अविस्सिपवदिपयो अविस्सिपवरो ।

§ १९, कुवो ! अविस्सिपवदिपय अविस्सिपवरोपयो अविस्सिपवरोपयो अविस्सिपवरोपयो  
 वरिस्सिपवदिपय विस्सिपवदिपयससस सम्माभिष्ठापय मिष्ठाहिस्सिपय पयससस गतिदे  
 अविस्सिपवदिपयवरो ।

साय सम्पत्त्य प्राप्त होनेपर सम्पत्त्य और सम्पत्तिमिष्ठापका अन्त्यसे अवस्थितपना कहा है ।  
 इससे मान्य होता है कि पूर्वोक्तमें कम्पकी प्रधानतासे कथन किया है ।

§ १८ वरिस्सिपवदिपयो अपेक्षा ही सम्पत्त्य और सम्पत्तिमिष्ठापका अवस्थितपना  
 स्वीकार किया जाय तो अन्त्यकरण करने और मिष्ठापका प्रथम स्थितिको गलाकर दूसरी  
 स्थितिमें विस्सिपवदिपयमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका स्थितिरूपमें प्राप्त कर दिया है ऐसे प्रथमोपपन्न  
 सम्पत्तिपट्टे ही सम्पत्त्य और सम्पत्तिमिष्ठापका अवस्थितपना प्राप्त होता है क्योंकि  
 वरिस्सिपवदिपयमोहनीयके विस्सिपका गळम नहीं होता है । परन्तु पविस्सिप आचार्यने वरिस्सिप  
 अवस्थितपनेका कथन नहीं किया है । इससे जाना जाता है कि पविस्सिप आचार्यने इस प्रदेसमें  
 कम्पकी प्रधानतासे कथन किया है । बुद्धिसे भी यही स्पष्ट होता है, क्योंकि कम्पकम्पका कम्प  
 रूपसे रहता ही कम्पस्थिति नहीं आती है । केवल कम्पकम्प स्थितिरूप नहीं हो सकता क्योंकि  
 मध्य, स्थिति और अनुमानके आधारकी केवल स्थिति माननेमें विरोध जाता है ।

॥ अविस्सिपवदिपयविस्सिपका कोई भी जीव होता है ।

§ १९ क्योंकि विस्सिप सम्पत्त्य और सम्पत्तिमिष्ठापको निश्चय कर दिया है ऐसे किसी  
 एक मिष्ठाहिप जीवके अन्त्यतर गति अन्त्यतर कथन, अन्त्य पर्यायके योग्य अन्त्यतर अविस्सिपवदिपय  
 अन्त्यतर केवलाके रहते हुए प्रथमोपपन्न सम्पत्त्य के प्राप्त करने पर सम्पत्त्य और सम्पत्तिमिष्ठापका  
 अविस्सिप मात्र देखा जाय है ।

विस्सिपवदिपय—सम्पत्त्य और सम्पत्तिमिष्ठापकी सुखगार स्थितिविमर्शिका तन्मा चारी  
 गतिपिका सम्पत्ति जीव हो सकता है, क्योंकि कम्प दातो मध्यस्थिकी एकत्र स्थितिविमर्शिक  
 एकत्रसे ही प्राप्त होती है और इनमें मिष्ठापका संकल्प सम्पत्तिदे ही होता है । तथा चारी  
 स्थितिके मिष्ठाहिप जीवके वरिस्सिप ही मध्यस्थिकी अन्त्यतर स्थितिविमर्शिक ही होती है क्योंकि  
 मिष्ठाहिपके अन्त्यस्थितिरूपका और स्थितिरूपके द्वारा अन्त्यतर इनकी स्थितिके स्थितिके स्थितिके  
 आती है । किन्तु किस सम्पत्तिदे इनकी सुखगार या अवस्थित स्थितिविमर्शिक नहीं की इस  
 सम्पत्तिदे प्रथम समर्थों और इन दोनों प्रकृतियोंकी उपायान्ते अन्य सम्पत्तिपट्टिके द्वितीयपि  
 समर्थों में इनकी अन्त्यतर स्थितिविमर्शिक बन जाती है तथा किस मिष्ठाहिपके सम्पत्त्यको प्रथम  
 करनेके पक्षे समर्थों सम्पत्त्य और सम्पत्तिमिष्ठापकी स्थितिके मिष्ठापकी स्थिति एक समय  
 मध्यिक है इनके द्वितीय समर्थों सम्पत्त्यके प्रथम कालपर सम्पत्त्य और सम्पत्तिमिष्ठापकी अन्त्य

सम्पत्ति स्थितिके स्थितिके











§ २४ अणुद्विस्सादि जाव सन्वद्वसिद्धि त्ति सन्वपयडीणमप्पदरं कस्स ? अणद० ।  
 एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-आमिणि०-सुद०-ओहि०-मणपञ्ज०-संजद०-  
 समाहय०-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाकसाद०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-  
 खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छादिद्वि त्ति । ओराब्बियमिस्स०-छन्वीस-  
 पयडि०-तिण्हं पदाणमोघं । सम्मत्त-सम्मामि०-अप्पद०-ओघं । एवं वेउव्वियमिस्स०-  
 कम्महय०-अणाहारए त्ति अभव० छन्वीसपयडीणं तिण्हं पदाणमेइंदियभंगो ।

एवं सामित्ताणुगमो समत्तो ।

\* एत्तो एगजीवेण कालो ।

§ २५. सुगममेदं सुत्तं ।

\* मिच्छुत्तस्स भुजगारकम्मंसिओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ २६. एवं पि सुगम ।

\* जहएणेण एगसमओ ।

होती किन्तु जब समुत्कीर्तनामें भी आनतादिमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके पद ओघके समान बतलाये हैं तब इसे लेखकोंकी भूल नहीं कह सकते । तब प्रश्न हुआ कि तो यहाँ अवस्थित पद कैसे बनता है ? इसपर वीरसेनस्वामीने यह समाधान किया है कि जिसने आनतादिकमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उल्लेखनाद्वारा मिथ्यात्वसे कम स्थिति कर ली है वह जब सम्यक्त्वके सम्मुख होता है तब मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिरण्डके पतन द्वारा यदि सम्यक्त्वकी स्थितिसे मिथ्यात्वकी स्थिति एक समय अधिक करके वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करता है तो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति बन जाती है । यह कालकी प्रधानतासे कथन किया है । पर जब निषेकोकी प्रधानतासे विचार करते हैं तब सगान स्थितिवालोंके सम्यक्त्वकी अवस्थितविभक्ति प्राप्त होती है । किन्तु इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति नहीं बनती ।

§ २४ अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतरस्थितिबिभक्ति किसके होती है ? किसी भी जीवके होती है । इसी प्रकार आहारककाययोगी आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकपाथी, अभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत सूक्ष्मसापरायिकसयत, यथाख्यातसयत, सयतासयत, अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें छन्वीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा तीन पदोंका भग ओघके समान है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिबिभक्ति ओघके समान है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । अभव्योंमें छन्वीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा तीन पदोंका भग एकेन्द्रियोंके समान है ।

इस प्रकार स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ ।

\* आगे एक जीवकी अपेक्षा कालानुगमका अधिकार है ।

§ २५. यह सूत्र सुगम है ।

\* मिथ्यात्वके भुजगारस्थितिसत्कर्मवाले जीवका कितना काल है ?

§ २६ यह सूत्र भी सुगम है ।

\* जघन्य काल एक समय है ।



§ २४. अणुहिस्सादि जाव सच्चट्टसिद्धि त्ति सव्वपयडीणमप्पदरं कस्स ? अणद० ।  
 एवमाहार०-आहारमिस्स० अवगद०-अकसा० आभिणि० सुद०-ओहि०-मणपञ्ज० संजद०-  
 समाह्य०-छेदो०-परिहार०-सुहम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-  
 खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति । ओरालियमिस्स० छब्बीस-  
 पयडि० तिण्हं पदाणमोघं । सम्मत्त-सम्मामि० अप्पद० ओघं । एवं वेउव्वियमिस्स०-  
 कम्मइय०-अणाहारए त्ति अभव० छब्बीसपयडीणं तिण्हं पदाणमेइदियभंगो ।

एवं सामित्ताणुगमो समतो ।

\* एत्तो एगजीवेण कालो ।

§ २५. सुगममेदं सुत्तं ।

\* मिच्छत्तस्स भुजगारकम्मंसिओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ २६. एवं पि सुगम ।

\* जहणणेण एगसमओ ।

होती किन्तु जब समुत्कीर्तनामें भी आनतादिमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके पद ओघके समान बतलाये हैं तब इसे लेखकोंकी भूल नहीं कह सकते । तब प्रश्न हुआ कि तो यहाँ अवस्थित पद कैसे बनता है ? इसपर वीरसेनस्वामीने यह समाधान किया है कि जिसने आनतादिकमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उल्लेखनाद्वारा मिथ्यात्वसे कम स्थिति कर ली है वह जब सम्यक्त्वके सम्मुख होता है तब मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिखण्डके पतन द्वारा यदि सम्यक्त्वकी स्थितिसे मिथ्यात्वकी स्थिति एक समय अधिक करके वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करता है तो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति बन जाती है । यह कालकी प्रधानतासे कथन किया है । पर जब निषेकोंकी प्रधानतासे विचार करते हैं तब सभान स्थितिवालोंके सम्यक्त्वकी अवस्थितविभक्ति प्राप्त होती है । किन्तु इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति नहीं बनती ।

§ २४ अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतरस्थितिविभक्ति किसके होती है ? किसी भी जीवके होती है । इसी प्रकार आहारककाययोगी आहारकमिश्रकाय-योगी, अपगतवेदवाले, अकषाथी, अभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनपर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत सूक्ष्मसापरायिकसंयत, यथाख्यात-सयत, सयतासयत, अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशम-सम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा तीन पदोंका भग ओघके समान है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्ति ओघके समान है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । अभव्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा तीन पदोंका भग एकेन्द्रियोंके समान है ।

इस प्रकार स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ ।

\* आगे एक जीवकी अपेक्षा कालानुगमका अधिकार है ।

§ २५ यह सूत्र सुगम है ।

\* मिथ्यात्वके भुजगारस्थितिसत्कर्मवाले जीवका कितना काल है ?

§ २६ यह सूत्र भी सुगम है ।

\* जघन्य काल एक समय है ।



ट्टिदीणं बंधस्स सव्वे वि पाओग्गा ? ण, परिमिदाणं ट्टिदीणं बंधस्स परिमिदसंकिंसेसाणं चेव कारणत्तादो । तं जहा—सव्वजहण्णबंधो धुवट्टिदी णाम । तिससे ट्टिदीए बंधपाओग्गाणि असंखेज्जलोगमेत्तट्टिदिबंधज्जवसाणट्टाणाणि छवट्टीए असंखे० लोगमेत्तछट्टाणेहि सह अवट्टिदाणि । समयुत्तरधुवट्टिदीए वि एत्तियाणि चेव । णवरि धुवट्टिदिपरिणामेहिंतो पलिदो० असंखे० भागपडिभागेण विसेसाहियाणि । एवं विसेसाहियकमेण ट्टिदाणि जाव सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीए चरिमसमओ त्ति । पुणो धुवट्टिदीए असंखेज्जलोगज्जवसाणाणि पलिदो० असंखे० भागमेत्तखंडाणि कायव्वाणि । ताणि च अण्णोणं विसेसाहियाणि । एवं सव्वट्टिदिअज्जवसाणाणि खंडेदव्वाणि । संपहि धुवट्टिदीए पढमखंड-ट्टिदअसंखे० लोगट्टिदिबंधज्जवसाणट्टाणेहि धुवट्टिदी चेव बज्जदि ण उवरिमट्टिदीओ । कुदो ? तब्बंधसत्तीए तेसिमभावादो । णिरुद्धट्टिदीए पुण हेट्टिमट्टिदीओ ण बज्जति; सव्वजहण्णट्टिदिबंधादो हेट्टा बंधट्टिदीणमभावादो । पुणो तत्थतणविदियखंडपरिणामेहि धुवट्टिदि समउत्तरधुवट्टिदि च बंधदि ण उवरिमट्टिदीओ । पुणो तदियखंडपरिणामेहि धुवट्टिदि समउत्तरधुवट्टिदि दुसमउत्तरधुवट्टिदि च बंधदि । एवं तिसमय-चदुसमय-पंचसमय-युत्तरादिकमेण धुवट्टिदि बंधाविप णेदव्वं जाव चरिमपरिणामखंडं त्ति । पुणो चरिम-खंडपरिणामेहि धुवट्टिदिपट्टुहि समयुत्तरादिकमेण परिणामखंडमेत्तट्टिदीओ बज्जति, ण

**शंका—**वे सब सक्केश परिणाम क्या सब स्थितियोंके बन्धके योग्य होते हैं ?

**समाधान —**नहीं, क्योंकि परिमित स्थितियोंके बन्धके परिमित सक्केश परिणाम ही कारण होते हैं । उसका खुलासा इस प्रकार है—सबसे जघन्य बन्धका नाम ध्रुवस्थिति है । उस स्थितिके बन्धके योग्य असख्यात लोकप्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान होते हैं । जो घटस्थानपतित वृद्धिकी अपेक्षा असख्यात लोकप्रमाण छहस्थानोंके साथ अवस्थित हैं । एक समय अधिक ध्रुवस्थिति-बन्धके योग्य भी इतने ही स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान होते हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि वे परिणाम ध्रुवस्थितिके परिणामोंमें पत्योपमके असख्यातवें भागका भाग देने पर जितना छव्व आवे उतने ध्रुवस्थितिके परिणामोंसे अधिक होते हैं । इस प्रकार सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर-प्रमाण स्थितिके अन्तिम समय तक वे परिणाम उत्तरोत्तर विशेषाधिक क्रमसे स्थित हैं । पुन ध्रुवस्थितिके असख्यात लोकप्रमाण परिणामोंके पत्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण खण्ड करने चाहिये । जो परस्पर विशेषाधिक है । इसी प्रकार सब स्थितियोंके परिणामस्थानोंके खण्ड करने चाहिये । इनमें ध्रुवस्थितिके पहले खण्डमें स्थित असख्यात लोकप्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानोंसे ध्रुवस्थितिका ही बन्ध होता है अगली स्थितियोंका नहीं, क्योंकि उन परिणामोंमें आगेकी स्थितियोंके बन्धकी शक्ति नहीं पाई जाती है तथा उन परिणामोंके द्वारा ध्रुवस्थितिसे नीचेकी स्थितियोंका बन्ध नहीं होता है, क्योंकि सबसे जघन्य स्थितिबन्धके नीचे बन्धस्थितियों नहीं पाई जाती हैं । पुन ध्रुवस्थितिसम्बन्धी दूसरे खण्डके परिणामोंसे ध्रुवस्थिति और एक समय अधिक ध्रुवस्थितिका बन्ध होता है, किन्तु इससे आगेकी स्थितियोंका बन्ध नहीं होता । पुन तीसरे खण्डके परिणामोंसे ध्रुवस्थिति, एक समय अधिक ध्रुवस्थिति और दो समय अधिक ध्रुवस्थितिका बन्ध होता है । इस प्रकार तीन समय, चार समय और पाँच समय आदि अधिकके क्रमसे ध्रुवस्थितिका बन्ध कराते हुए अन्तिम परिणामखंड तक ले जाना चाहिये । पुन अन्तिम खण्डके परिणामोंसे ध्रुवस्थितिसे लेकर एक समय अधिक आदिके क्रमसे परिणामोंके जितने खंड हों उतनी स्थितियोंका बन्ध होता



मेत्तो, उक्त्सेण अट्टसमयमेत्तो । कुदो ? एगपरिणामप्पणादो । एगट्टिदीए सव्वट्टिदिवंध-  
ज्झवसाणट्ठाणेषु अवट्ठाणकालो पुण जहण्णोण एगसमयमेत्तो, उक्क० अंतोमुहुत्तं । पुणो  
विसमय-तिसमयादिपाओग्गेहि द्विदिवंधज्झवसाणट्ठाणोहि णिरुद्धेगट्टिदिं बंधमाणेण तट्टिदि-  
बंधकाले समत्ते संकिलेसक्खयाभावोदो तिस्से द्विदिवंधज्झवसाणट्ठाणोहि समयुत्तरादिकमेण  
पलिदो० असंखे० भागमेत्तद्विदिविपप्पेसु उवरि चडिदूण बद्धेसु अट्ठाक्खएण एगो भुज-  
गारसमओ लद्धो होदि । पुणो चरिमसमए एगट्टिदिवंधपाओग्गट्टिदिवंधज्झवसाणट्ठाणेषु  
अवट्ठाणकालो समत्तो । तस्स समत्तीए संकिलेसक्खओ णाम ।

§ ३३. एवविहेण संकिलेसक्खएण उवरि समयुत्तर-दुसमयुत्तरादिकमेण जाव संखेज-  
सागरोवममेत्तद्विदीयां द्विदिवंधज्झवसाणट्ठाणाणि समयाविरोहेण परिणामिय' बंधमाणस्स  
संकिलेसक्खएण भुजगारस्स विदियो समयो । तदिए समए कालं कादूण विग्गहगदीए  
पंचिदिएसुप्पणपढमसमए असण्णिट्टिदि बंधमाणस्स एहदियस्स तदियो भुजगारसमयो ।  
चउत्थसमए सरीरं धेत्तूण अंतोकोडाकोहिट्टिदिं बंधमाणस्स चउत्थो भुजगारसमओ ।  
एवं मिच्छत्तभुजगारस्स चत्तारि वेव समया । जत्थ जत्थ भुजगारो वुच्चदि तत्थ तत्थ  
एत्थ परुविदअत्थो परुवेयव्वो ।

❀ अप्पदरकम्मसिओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ ३४. सुगममेदं ।

आठ समय त्रमाण है, क्योंकि यहाँ एक परिणामकी मुख्यता है । परन्तु सब स्थितिबन्धाध्यवसान-  
स्थानोंमें एक स्थितिका अवस्थानकाल जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टरूपसे अन्तर्मुहूर्त होता है ।  
पुन दो समय और तीन समय आदिके योग्य स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानोंके द्वारा विवक्षित एक  
स्थितिको बाधनेवाले जीवके यद्यपि उस स्थितिबन्धका काल समाप्त हो जाता है तो भी सक्लेशका  
क्षय न होनेसे उस स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानोंके द्वारा एक समय अधिक आदिके क्रमसे  
पल्योपमके असख्यातवर्गे भागप्रमाण स्थितिविकल्पोंके ऊपर जाकर बन्ध होनेपर अट्ठाक्षयसे एक  
भुजगारसमय प्राप्त होता है । पुन अन्तिम समयमें एक स्थितिबन्धके योग्य स्थितिबन्धाध्यवसान-  
स्थानोंमें रहनेका काल समाप्त होता है । उसकी समाप्तिको सक्लेशक्षय कहते हैं ।

§ ३३ इस प्रकारके सक्लेशक्षयके द्वारा ऊपर एक समय अधिक और दो समय अधिक आदिके  
क्रमसे सख्यात हजार सागरप्रमाण स्थितियोंके स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानोंको यथाविधि परणमाकर  
बन्ध करनेवाले जीवके सक्लेशक्षयसे भुजगारका दूसरा समय होता है । तीसरे समयमें जो एकेन्द्रिय  
मरकर विग्रहगतिसे पचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ है वह वहाँ उत्पन्न होनेके पहले समयमें असङ्गीकी  
स्थितिका बन्ध करता है तब इसके तीसरा भुजगार समय होता है । तथा चौथे समयमें शरीरको  
ग्रहण करके अन्तःकोडाकोहीप्रमाण स्थितिका बन्ध करनेवाले उस जीवके चौथा भुजगार समय होता  
है इस प्रकार मिथ्यात्वसम्बन्धी भुजगारके चार ही समय होते हैं । आगे जहाँ जहाँ भुजगारका  
कथन किया जाय वहाँ वहाँ यहाँ पर कहे गये अर्थकी प्ररूपणा करनी चाहिये ।

❀ मिथ्यात्वके अल्पतरस्थितिसत्कर्मवाले जीवका कितना काल है ?

§ ३४ यह सूत्र सुगम है ।

१ भा० प्रतौ परिणमिय हति पाठ ।

§ ३५. यथा  
परिधि १५.  
§ ३६.  
अच्छिदो,  
कातो गमिदो  
पढमच्छावट्टि  
ममिय अथ  
देवेसु ४५.  
सुद्धकालं संतक  
एव वेअता  
उक्त्सकालो  
§ ३७.  
जह-  
बधन्य  
§ ३५. यथा  
नोचे उत्तरकर  
करता है वो  
उत्कृष्ट  
§ ३६. यथा  
स्थितिका वन्य  
योग्य सर्वोत्कृष्ट  
ज्योतिव करके वन्य  
वहाँ पर जीवनमें  
काल तक भ्रमण  
दूसरी बार ४५.  
नाकर एकवीस  
और वहाँ ५५.  
वह सुचगा  
एक सो वेसठ ४५.  
§ ३७. यह  
बधन्य





§ ३८. कुदो ? भुजगारमप्पदरं वा कुणमाणेण एगसमयसंतसमाणद्धिदीए पवद्धाए अवद्धिदस्स एगसमयुवलंमादो

\* उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ३९. कुदो ? भुजगारमप्पदरं वा कादूण संतसमाणद्धिदिवंस्स उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंमादो

\* एवं सोलसकसाय-एवणोकसायाणं ।

§ ४०. जहा मिच्छत्तस्स भुजगार-अप्पदर-अवद्धिदाणं परूवणा कदा तहा सोलक-एवणोकसायाणं भुजगार-अप्पदर-अवद्धिदाणं वि परूवणा कायक्का । एत्थतण-विसेसपरूवणद्वमुत्तरमुत्तं भणदि ।

\* एवरि भुजगारकम्मंसिओ उक्कस्सेण एगएवीससमया ।

§ ४१. तं जहा—सत्तारससमयादियएगावलियसेसाउएण एहंदिएण अणंतोणुबंधि-कोधं मोत्तण सेसमाणादिपण्णारसपयहीसु परिवाहीए पण्णारससमयेहि अद्दाक्खएव अण्णोणं पेक्खिय वद्धिय बद्धासु पण्णारस वि पयहीओ भुजगारसंकमपाओगगाओ जादाओ । पुणो बंधावलियमेत्तकाले अदिकंते सत्तरसमयमेत्ताउअसेसे पुन्नुत्तावलिय-कालम्मि पढमसमयएवहुद्धि पण्णारससमएसु वद्धिदूण बद्धपण्णारसपयहिद्धिदि बंधपरि-वाहीए अणंतोणुबंधिकोवे संकममाणस्स पण्णारस भुजगारसमया अणताणुबंधिकोधस्स

§ ३८ क्योंकि भुजगार या अल्पतरको करनेवाले किसी जीवके द्वारा एक समय तक सत्तामें स्थित स्थितिके समान स्थितिका बन्ध करने पर अवस्थितका एक समय काल पाया जाता है ।

\* उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३९ क्योंकि भुजगार या अल्पतर करके सत्तामें स्थित स्थितिके समान स्थितिके निरन्तर बंधनेका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है ।

\* इसी प्रकार सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका काल जानना चाहिये ।

§ ४० जिस प्रकार मिथ्यात्वके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित भगोंका कथन किया है उसी प्रकार सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित विकल्पोंका कथन करना चाहिये । अब यहाँ पर विशेष कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

\* इतनी विशेषता है कि भुजगारस्थितिबिभक्तिवालेका उत्कृष्ट काल उच्चीस समय है ।

§ ४१ उसका खुलासा इस प्रकार है—जिसके सत्रह समय अधिक एक आवलिप्रमाण आयु शेष है ऐसे एकेन्द्रियके द्वारा अनन्तानुबन्धी क्रोधको छोड़कर शेष मान आदि पन्द्रह प्रकृतियोंके क्रमसे पन्द्रह समयोंमें अद्वाक्षयसे एक दूसरेको देखते हुए उत्तरोत्तर स्थितिको बढ़ाकर बाँधने पर पन्द्रह ही प्रकृतियाँ भुजगारसक्रमके योग्य हो गई । पुन. बन्धावलिप्रमाण कालके व्यतीत हो जाने पर और उस एकेन्द्रियके सत्रह समयप्रमाण आयुके शेष रहने पर पूर्वोक्त आवलिके कालके भीतर प्रथम समयसे लेकर पन्द्रह समयोंमें घड़ाकर बाँधी हुई पन्द्रह प्रकृतियोंकी स्थितिको जिस क्रमसे बन्ध हुआ था उसी क्रमसे अनन्तानुबन्धी क्रोधमें सक्रमण करनेवाले जीवके अनन्तानुबन्धी क्रोधके पन्द्रह भुजगार समय प्राप्त होते हैं । पुन सोलहवें समयमें अद्वाक्षयसे अनन्तानुबन्धी क्रोधको

१ ता ० प्रती —बंधिकोष इति पाठः



४३. इत्थि-पुरिस-हस्स-रदीणमवट्ठिदकालो कथमुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तमेत्तो ? ण, कसायाणमंतोकोडाकोडिसागरोवममेत्तद्विदिमवट्ठिदमरूपेण अंतोमुहुत्तं कालं धंधिय बंधाव लियादिकत्तकसायट्ठिदि पुण्युत्तचदुण्हं पयडोणमुपरि अंतोमुहुत्तं संकामिदे इत्थि-पुरिस-हस्स-रदीणमवट्ठिदस्स अंतोमुहुत्तमेत्तकालुलंमादो । एषो अवट्ठिदकालो कत्थ गहिदो ? सण्णीसु । कुदो ? तत्थ इत्थि पुरिस हस्स-रदीणं धंधगद्दाए बहुत्तुवलांमादो । बारसकसाय-

**विशेषार्थ—** यहाँ सोलह कपायोंकी भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल १९ समय बतलाया है। इसके लिये दो पर्यायोंका ग्रहण किया है, क्योंकि एक पर्यायकी अपेक्षा १९ भुजगार समय नहीं प्राप्त होते। ऐसा नियम है कि सोलह कपाय और नौ नोकपायोंका परस्परमें सक्रमण होता है। इसके लिये यह व्यवस्था है कि जिस समय जिस प्रकृतिका बन्ध होता है उसमें अन्य सजातीय प्रकृतिका सक्रमण होता है। चूँकि यहाँ अनन्तानुबन्धी क्रोधकी भुजगार स्थितिके उत्कृष्ट कालको प्राप्त करना है अतः ऐसा एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय जीव लो जिसकी वर्तमान आयु एक आवलि और सत्रह समय शेष रही हो उसने पन्द्रह समयमें अनन्तानुबन्धी क्रोधको छोड़कर शेष पन्द्रह कपायोंकी स्थिति उत्तरोत्तर बढ़ा बढ़ाकर बँधी। पहले समयमें अनन्तानुबन्धी मानकी स्थितिको सत्तामें स्थित स्थितिसे बढ़ाकर बँधा। दूसरे समयमें अनन्तानुबन्धी मायाकी स्थितिको अनन्तानुबन्धी मानकी स्थितिसे बढ़ाकर बँधा इत्यादि। तदनन्तर एक आवलि कालके व्यतीत हो जाने पर उसी क्रमसे इनका अनन्तानुबन्धी क्रोधमें सक्रमण किया। इस प्रकार भुजगारके पन्द्रह समय तो ये प्राप्त हुए। अब रहे चार समय सो सोलहवें समयमें अद्वाक्षयसे उसने अनन्तानुबन्धी क्रोधकी स्थितिको बढ़ाकर बँधा। सत्रहवें समयमें सक्लेशक्षयसे अनन्तानुबन्धी क्रोधके साथ सब कपायोंकी स्थितिको बढ़ाकर बँधा। इस प्रकार भुजगारके सत्रह समय तो एकेन्द्रिय या विकलत्रयके प्राप्त हुए। अब यह जीव मरकर एक विग्रहसे सद्गी पचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ, इसलिये उसने विग्रहकी अवस्थामें असद्गीके योग्य स्थितिको बढ़ाकर बँधा और दूसरे समयमें शरीर ग्रहणकर लेनेसे सद्गी पञ्चेन्द्रियके योग्य स्थितिको बढ़ाकर बँधा। इस प्रकार भुजगार के १९ समय प्राप्त हुए। इसीप्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदिके और नौ नोकपायोंके १६ भुजगार समय प्राप्त होते हैं। किन्तु नौ नोकपायोंके सम्बन्धमें इतनी विवेकता है कि सोलह कपायोंका अद्वाक्षयसे उत्तरोत्तर बढ़ाकर बन्ध करावे। तदनन्तर सत्रहवें समयमें सक्लेशक्षयसे स्थिति बढ़ाकर बन्ध करावे। पुनः एक आवलि हो जानेपर इनका नौ नोकपायोंमें सत्रह समयके द्वारा सक्रमण करावे। तदनन्तर इस जीवको सद्दियोंमें उत्पन्न कराकर पूर्वोक्त प्रकारसे दो भुजगार समय और प्राप्त करे। इस प्रकार नौ नोकपायोंके १६ भुजगार समय प्राप्त होते हैं।

§ ४३. शका—खीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिका अवस्थित काल उत्कृष्ट रूपसे अन्तर्मुहूर्त कैसे प्राप्त होता है ?

**समाधान—**नहीं, क्योंकि जब कोई जीव कपायोंकी अन्तर्कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिको अवस्थितरूपसे अन्तर्मुहूर्त कालतक बँधकर पुनः बन्धावलिके व्यतीत होने पर उस स्थितिका पूर्वोक्त चार प्रकृतियोंमें अन्तर्मुहूर्त कालतक सक्रमण करता है तब उस जीवके खीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिकी अवस्थितस्थितिभिक्तिका अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है।

**शंका—**यह अवस्थित काल कहाँ पर ग्रहण किया गया है ?

**समाधान—**सद्दियोंमें।

**शका—**यह अवस्थित काल सद्दियोंमें ही क्यों ग्रहण किया गया है ?

[२२]

गो. २२. १०

हृदयदे

वे. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

११. ११. १०

सुखे भवेत्सुखमेव ।  
 ब्रह्मसुखं कृतं विपुलं सारम्  
 सुखं संसारी हिमविहीय  
 । ब्रह्मसुखं कृतं विपुलं  
 सुखमेव । ब्रह्मसुखम्

मनोबोद्धसायाप्यमुषमसेविहि अतरकथं काठम् सम्बोधयते कथं अष्टविहारीको अंतो-  
 मुहुरमेवो सम्मदि विदिपहिदीय हिदमिसेगायमवहिवाए गठभासवादी सो क्रिय  
 पेयदि । न, पहियाबल व कम्मवत्तपहिदिसमपसु पहिसमय यत्तमापेसु कम्महिदीय  
 अष्टविहाराविरोहादो । यिसेगेहि अविहृदयं सारसहासियो जेपुददि पि ह्यो गम्भे ?  
 सम्मत्त सम्मामिच्छायावमवहिदस्स अतोमुहुर मोत्थ तस्सेण एगसमयपहुवपादो

ॐ अर्थात्तापुर्णविषयतस्तस्य अवसत्तव्यं जहम्पुस्तस्येण एगसमयो ।

समाधान—क्योंकि वहाँपर कीवेद पुत्रपेव, हास्य और उल्लास वगैरका बहुत पाया जाता है ।

शुद्धा—उपसममेवीमें अन्तरकरण कथने सर्वोपसम कर केनेपर बारह कथाय और नौ नौकपार्थका अवस्थितका अन्तर्मुहुरे प्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि वहाँपर विरोध स्थितिमें नियत नियेक अवस्थित रहते हैं उनका फलन नहीं होता है अतः इस अवस्थितका एक प्रमाण क्यों नहीं किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँपर पटिकायनके कारणे समान कर्मकर्मकी स्थितिसे समय प्रत्येक समयमें गच्छते रहते हैं, अतः वहाँपर कर्मस्थितिका अवस्थितयत्तना सामनेमें विरोध आता है ।

शुद्धा—वहिपुत्रम आचार्यने नियेकीकी अपेक्षा अवस्थितयत्तनेको स्वीकार नहीं किया है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि यहिपुत्रम आचार्यने सम्पत्त्व और सम्मामिच्छात्वकी स्थितिका एकत्र अवस्थितका अन्तर्मुहुरे न कहकर एक समय कहा है । इससे माझ्म पड़ता है कि यहिपुत्रम आचार्यको नियेकीकी अपेक्षा अवस्थितका इत नहीं है ।

विशेषार्थ—यात वह है कि जब कोई जीव पाप्य कथाय और नौ नौकपार्थका उपसम कर केवा है तब उसके वत्त प्रकृतियेकि सय नियेक अन्तर्मुहुरे काठयक अवस्थित रहते हैं उनमें अन्तर्पेय, आदि कुछ भी नहीं होता । इसपर अंकाकार कहा है कि अवस्थित विमर्शिका वह कथन क्यों नहीं किया जाता है ? इसका जो समाधान किया गया है उसका साथ यह है कि यद्यपि वत्त प्रकृतिये नियेक अन्तर्मुहुरे काठयक अवस्थित रहते हैं वह ठीक है फिर भी जिस प्रकार पटिकायनका एक एक बुरकमसे प्रति समय घटता जाता है उसी प्रकार उनकी स्थिति भी प्रति समय एक एक समय घटती जाती है, क्योंकि अन्तरकरण करनेसे समय वनकी जितनी स्थिति रहती है अन्तरकरणकी क्षमाधिके समय वह अन्तर्मुहुरे कम हो जाती है, अतः उपसममेविमें अवस्थित विमर्श नहीं प्राप्त होती । इसपर फिर अंकाकार कहा है कि स्थिति सके ही घटती जाती पर नियेक ही एक समान बने रहते हैं, अतः नियेकीकी अपेक्षा वहाँ अवस्थितविमर्शिक बत जावगी । इसका बीरसेन स्वामीने जो समाधान किया है उसका साथ यह है कि यहिपुत्रम आचार्यने नियेकीकी अपेक्षा अवस्थितविमर्शिको नहीं स्वीकार किया है । इसका प्रमाण यह है कि यदि कर्मने नियेकीकी अपेक्षा अवस्थितयत्तनेको स्वीकार किया होता तो वे सम्पत्त्व और सम्मामिच्छात्वकी स्थितिसे अतएव अवस्थितका एक एक समयप्रमाण न कहकर अन्तर्मुहुरे प्रमाण कहते, क्योंकि एक अन्तर्मुहुरे काठयक उनका भी उपसममात्र देना जाता है ।

ॐ अन्तर्मुहुरे कीवत्तपुत्रकी अवस्थितस्थितिविमर्शिका अवस्थय और उत्कृष्ट काठ एक समय है ।

अवस्थित काठ वत्त सत्ते कम  
 १) अन्तर्मुहुरेकी सत्त कम  
 अन्तर्मुहुरेकी सत्त होवे सत्त  
 न करता है तब का जीवने अन्तर्  
 मुहुरे कम पाया जाता है ।

मा मा है ।

§ ४४. कुदो ? अणंताणु०चउकं णिसंतीकयसम्माइट्टिणा मिच्छते सासणसम्मत्ते वा पडिबण्णे तस्स पढमसमए चेव अणंताणु०चउकस्स ट्टिदिसंतुप्पत्तीदो । कुदो असंतस्स अणंताणु०चउकस्म उप्पत्ती ? ण, मिच्छतोदएण कम्मइयवग्गणक्खंघाण-मणंताणु०चउकसरूवेण परिणमण पडि विरोहाभावादो । सासणे कुदो तेसिं सतुप्पत्ती ? सासणपरिणामादो । को सासणपरिणामो ? सम्मत्तस्स अभावो तच्चत्थेसु असद्वहणं । सो केण जणिदो ? अणंताणुबंधीणमुदएण । अणंताणुबंधीणमुदओ कुदो जायदे । परिणामपच्चएण ।

\* सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अवट्ठिद-अवत्तच्चकम्मंसिओ केव-चिरं कालादो होदि ?

§ ४५ सुगमं ।

\* जहणुक्कस्सेण एगसमओ ।

§ ४६. तं जहा—पुब्बुप्पणसम्मत्तसंतकम्ममिच्छाइट्टिणा सम्मत्तसंतकम्मस्सुवरि दुसमयुत्तरादिमिच्छत्तट्टिदिं बंधिय गदिदसम्मत्तस्स पढमसमए भुजगारो होदि । समयुत्तर-

§ ४४ क्योंकि जिस सम्यग्दृष्टि जीवने अनन्तानुबन्धी चतुष्कको निःसत्त्व कर दिया है वह जब मिथ्यात्व या सासादनसम्यक्त्वको प्राप्त होता है तब मिथ्यात्व या सासादनके प्रथम समयमें ही अनन्तानुबन्धी चतुष्कका स्थितिसत्त्व पाया जाता है ।

शंका—असद्रूप अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी मिथ्यात्वमें उत्पत्ति कैसे हो जाती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वके उदयसे कर्मणवर्गणास्कन्धोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्करूपसे परिणमन करनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शंका—सासादनमें उनकी सत्त्वरूपसे उत्पत्ति कैसे हो जाती है ?

समाधान—सासादनरूप परिणामोंसे ।

शंका—सासादनरूप परिणाम किसे कहते हैं ?

समाधान—तत्त्वार्थोंमें अश्रद्धानलक्षण सम्यक्त्वके अभावको सासादन रूप परिणाम कहते हैं ।

शंका—वह सासादनरूप परिणाम किस कारणसे उत्पन्न होता है ?

समाधान—अनन्तानुबन्धीचतुष्कके उदयसे होता है ।

शंका—अनन्तानुबन्धीचतुष्कका उदय किस कारण से होता है ?

समाधान—परिणामविशेषके कारण अनन्तानुबन्धीचतुष्कका उदय होता है ।

\* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य स्थिति-विमक्तिवाशे जीवका कितना कारा है ?

§ ४५ यह सूत्र सुगम है ।

\* जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ ४६ उसका खुलासा इस प्रकार है—जिसने पहले सम्यक्त्वसत्कर्मको उत्पन्न कर लिया है ऐसा कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव जब सम्यक्त्वसत्कर्मके ऊपर दो समय अधिक इत्यादिरूपसे मिथ्यात्वकी स्थितिको बाँधकर सम्यक्त्वको ग्रहण करता है तब उसके सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्वकी भुजगारस्थितिविभक्ति होती है । तथा एक समय अधिक



मुहुत्तेण दंसणमोहणीए खविदे अप्पदरकालो जह० अंतोमुहुत्तं होदि ।

❀ उक्कस्सेण वे छावट्टिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ४६. तं जहा—णिस्संतकम्मियमिच्छादिट्ठिणा सम्मत्ते गहिदे उवसमसम्मत्तद्धा समयूणमेत्ता अप्पदरकालो होदि । पुणो वेदगसम्मत्तं घेतूण तेण सम्मत्तेण पढमत्तावट्ठि गमिय पुणो सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जिय तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय वेदगसम्मत्तमुवणमिय तेण सम्मत्तेण विदिपत्तावट्ठि गमिय पुणो मिच्छत्तं गंतूण पल्लिदो० असंखे० भागमेत्तेण सव्वुकस्सुव्वेखणकालेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु उव्वेल्लिदेसु वेत्तावट्टिसागरोवमाणि पल्लिदो० असंखे० भागेण सादिरेयाणि सम्मत्त सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सप्पदरकालो । एवं जहवसहाहरियसुत्तमस्सिदूण ओवपरुवणं करिय संपहि उच्चारणमस्सिदूण भुजगारकाल-परुवणं कस्सामो ।

§ ५०. कालाणुगमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त० केवचिरं कालादो होदि ? जह० एगसमओ, उक्क० चत्तारि समया । अप्पदर० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० तेवट्टिसागरोवमसदं सादिरेयं । अवट्ठि० केवचि० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । सोलसक०-णवणोक्क० भुज० जह० एगसमओ, उक्क० एगुणवीस समया । अप्पदर-अवट्ठिदाणं मिच्छत्तभगो । अणताणु० चउक्क० अवत्तव्व० जहणुक्क० एगसमओ । सम्मत्त-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि०-अवत्तव्व० जहणुक्क० एगसमओ । अप्पद०

देता है तो उसके अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है ।

\* उत्कृष्ट काल साधिक दो छथासठ सागर है ।

§ ४९ उसका खुलासा इस प्रकार है—जिसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कर्मका सत्त्व नहीं है ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्व के ग्रहण करनेपर एक समयकम उपशम सम्यक्त्वका काल अल्पतरकाल होता है । पुन वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण करके और उस सम्यक्त्वके साथ प्रथम छथासठ सागर काल बिताकर तदनन्तर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और वहाँ अन्तर्मुहूर्त कालतक रहकर पुन वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके और उसके साथ द्वितीय छथासठ सागर काल बिताकर पुन मिथ्यात्वको प्राप्त करके जब वह पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण सर्वोत्कृष्ट उद्वेलेनाकालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलेना कर देता है तब उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका पल्योपमके असख्यातवें भाग से अधिक दो छथासठ सागर प्रमाण अल्पतर काल होता है ।

§ ५० इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके सूत्रके आश्रयसे ओघका कथन करके अब उच्चारणाके आश्रयसे भुजगारकालका कथन करते हैं—कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिविभक्तिका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल चार समय है । अल्पतर स्थितिविभक्तिका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल साधिक एकसौ त्रैसठ सागर है । अवस्थित स्थितिविभक्ति का कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । सोलह कषाय और नौ नोकपायोंकी भुजगारस्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एकसमय और उत्कृष्टकाल उन्नोस समय है । अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका भग मिथ्यात्वके समान है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार,

१ ता० प्रती - मुहुत्तो होदि इति पाठः ।





ण, अठारसमस्त भुजगारसमस्त विचारिजमाणस्ताणुवलंभादो । अप्पदर०—  
अवट्टिद० मिच्छत्तमंगो । अणंताणु० वउक० एवं चेव । णवरि अवत्तव्व० ओघं ।  
सम्मत्त०-सम्मामि० अप्पद० जह० एगसमओ, उक० तेत्तीसं सागरो० देवणाणि । सेसमोघं

§ ५२. पढमपुढवि० एवं चेव । णवरि सन्वेसिमप्पद० जह० एगसमओ, उक०  
सगट्टिदो देवणा । विद्यादि जाव सत्तमि ति मिच्छत्त० भुज० अ० एगस०, उक० वे  
समया । अप्प० ज० एगम०, उक० सगसगट्टिदो देवणा । अवट्टि० मोघं । बारसक०—

शंका—यहाँपर अठारह समयप्रमाण भुजगारकाल क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अठारहवाँ भुजगार समय विचार करनेपर वनता नहीं, अतः यहाँ  
उसे स्वीकार नहीं किया है ।

बारह कषाय और नौ नोकपायोंकी अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका भंग  
मिथ्यात्वके समान है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका कथन इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी  
विशेषता है कि अवक्तव्य स्थितिविभक्ति ओघके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी  
अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है ।  
शेष कथन ओघके समान है ।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंमें मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल तीन या  
दो समय घटित करके बतलाया है । साथ ही यह सूचना भी की है कि यहाँ दो समयवाला पाठ  
प्रधान है । मालूम होता है कि यह सूचना बहुलताकी अपेक्षासे की है । एक तो असह्य जीव नरकमें  
कम उत्पन्न होते हैं । उसमें भी पहले नरकमें ही उत्पन्न होते हैं । फिर भी सर्वत्र भुजगार स्थितिके  
तीन समय प्राप्त होना शक्य नहीं है । हाँ दो समय सातों नरकोंमें प्राप्त होते हैं । यही कारण है कि  
वीरसेन स्वामीने दो समयवाली मान्यताको मुख्यता दी । तथा नरकमें वेदकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट  
काल कुछ कम तेतीस सागर है, अतः इस अपेक्षासे वहाँ मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्ट  
काल कुछ कम तेतीस सागर प्राप्त होता है । इसी प्रकार अन्य प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्ट  
काल जानना चाहिये । तथा किसी भी विवक्षित कषाय और नोकपायकी भुजगार स्थितिके नरकमें  
सत्रह समय ही बनते हैं, क्योंकि सक्रमणकी अपेक्षा पन्द्रह, अद्धाक्षयकी अपेक्षा एक और सक्लेश-  
क्षयकी अपेक्षा एक इस प्रकार एक भवकी अपेक्षा भुजगार के कुल सत्रह समय ही प्राप्त होते हैं ।  
सामान्यसे जो भुजगारके उन्नीस समय बतलाये हैं वे दो पर्यायोंकी अपेक्षा घटित किये गये हैं ।  
पर यहाँ केवल एक नरक पर्याय ही विवक्षित है, अतः सत्रह समयसे अधिक नहीं बनते । यही कारण  
है कि वीरसेन स्वामीने नरकमें भुजगारके अठारहवें समयका भी निषेध कर दिया है । किन्तु नौ  
नोकपायोंके सत्रह समय घटित करनेमें जो विशेषता ओघप्ररूपणामें बतला आये हैं वह यहाँ भी  
जान लेनी चाहिये ।

§ ५२ पहली पृथिवीमें इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ सभी  
प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम अपनी  
स्थितिप्रमाण है ।

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिविभक्ति-  
का जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय है । अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य-  
काल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा अवस्थित  
स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है । बारह कषाय और नौ नोकपायोंकी भुजगार स्थिति-



सक० गवणोक० भुज० ज० एगस०, उक० तिणिण समयो अठारस समय। सेसं तिरिक्खोव०। णवरि पंचि० तिरि० पज्ज० इत्थिवेद० भुजगार० जह० एगस०, उक० सत्तारस समय। जोणिणि० पुरिस० णवुंस० भुज० ज० एगस०, उक० सत्तारस समय।

§ ५५. पंचि० तिरि० अपज्ज० मिच्छत्त-सोलमक० गवणोक० अप्पद० जह० एगसमओ, उक० अंतोम०। सेसं पंचि० तिरिक्खमंगो। णवरि इत्थि-पुरिस० ज० एगस०, उक० सत्तारस समय। सम्मत्त-सम्मामि० अप्प० ज० एगस०, उक० अंतो-

मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल मिथ्यात्वकी अपेक्षा तीन समय और शेषकी अपेक्षा अठारह समय है। तथा शेष कथन सामान्य तिर्यचोंके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल सत्रह समय है। तथा योनिमती तिर्यचोंमें पुरुषवेद और नपुसकवेदकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल सत्रह समय है।

**विशेषार्थ—**जिस प्रकार नारकियोंमें मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल तीन समय घटित करके वतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ उक्त तीन प्रकारसे तिर्यचोंके भी घटित कर लेना चाहिये। तथा उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंमें सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल अठारह समय प्राप्त होता है। जिसका खुलासा इस प्रकार है— उक्त तीनों प्रकारके तिर्यच असह्य भी होते हैं और सह्य भी। अब ऐसा असह्य जीव लो जिसकी आयुमें एक आवलि और सोलह समय शेष है। तब उसने विवक्षित कपायको छोड़कर शेष पन्द्रह कपायोंकी उत्तरोत्तर भुजगार स्थितिका पन्द्रह समयमें वन्ध किया। पश्चात् एक आवलिके बाद जब आयुमें सोलह समय शेष रहे तब उसने उन भुजगार स्थितियोंका पन्द्रह समयके द्वारा विवक्षित कपायमें सक्रमण किया। अनन्तर सोलहवें समयमें उसने अद्याक्षयसे भुजगार स्थितिको बाँधा और सत्रहवें समयमें ऋजु-गतिसे सहियोंमें उत्पन्न होकर सहियोंके योग्य स्थितिका वन्ध किया। पश्चात् अठारहवें समयमें सकलेशक्षयसे भुजगार स्थितिको बाँधा। इस प्रकार यहाँ भुजगार स्थितिके कुल अठारह समय प्राप्त होते हैं। किन्तु तिर्यच पचेन्द्रिय पर्याप्तके स्त्रीवेदकी और योनिमती तिर्यचके पुरुषवेद और नपुसकवेदकी भुजगार स्थितिके सत्रह समय ही प्राप्त होते हैं जिसका उल्लेख मूलमें किया ही है। घात यह है कि जो जिस वेदके साथ उत्पन्न होता है उसके पूर्व पर्यायके अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें वह वेद ही बँधता है, अतः योनिमती तिर्यचमें उत्पन्न होनेवाले जीवके पूर्व पर्यायके अन्तमें पुरुष व नपुसक वेदका बँध नहीं होनेसे सोलह कपायोंका उक्त वेदोंमें सक्रमण भी नहीं होता, अतः उक्त वेदोंके भुजगारके अठारह समय घटित नहीं होते। इसीप्रकार पर्याप्त तिर्यचके स्त्रीवेदके भुजगारका काल अठारह समय न रहकर सत्रह समय कहा है। सो यह सत्रह समय स्वस्थानकी अपेक्षा जानना चाहिये।

§ ५५. पचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी अल्प-तरस्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है तथा शेष स्थिति-विभक्तियोंका भंग तिर्यचोंके समान है किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल सत्रह समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मि-थ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी

इति। परं  
समया ५५

१५६. ५

वेगमया ५५५

दरनो ५५५

५५, ५५

दरनो ५५५

पत्नी दण्डा ५५५

प्रकार मन्त्र ५५५

भुजगार ५५५

रक्षा कर्तव्य ५५५

५५५ ५५५

और नौ नोक ५५५

तत्वा बनेदा ५५५

समान है। इतना

स्थितिविभक्तिका

प्रमाण है।

**विशेषार्थ—**

इति ५५५ ५५५

और पुरुषवेदका ५५५

होना है। इसका

परिमाण ५५५

भुजगार आदि ५५५

उत्पन्न ५५५

सह्य और ५५५

समय और ५५५

है। उक्त ५५५

योनिमती ५५५

समान है किन्तु ५५५

एक पूर्वको ५५५

बायुको बाँधकर ५५५

रहित हुए ५५५

५५५ देवोंमें

सम्यक्त्व ५५५

काल एक समय ५५५

जानना चाहिये। ५५५

अपनी अपनी ५५५

तरे [विनिर्णय]  
 १. कर्ता वरुण कर्ता। किं  
 रत्न० ३० १२३०, ३०।  
 १२३०, उक्त० वृत्ततः कर्ता।  
 ०. ३०. ३०. ३०।  
 ३०। वरि विनिर्णयः ३०।  
 ३०. ३०. १२३०, ३०। ३०।

विनिर्णयः कर्ता वरुण कर्ता  
 ३०. ३०. १२३०, ३०।  
 ३०. ३०. १२३०, ३०।  
 ३०. ३०. १२३०, ३०।

र विनिर्णयः कर्ता वरुण कर्ता  
 ३०. ३०. १२३०, ३०।  
 ३०. ३०. १२३०, ३०।  
 ३०. ३०. १२३०, ३०।

कर्ता वरुण कर्ता  
 ३०. ३०. १२३०, ३०।  
 ३०. ३०. १२३०, ३०।  
 ३०. ३०. १२३०, ३०।

सूच्य। एष मनुष्यव्यवहारः०। नगरि छम्बीस पयडीय सुब० अ० एषस०, उक्त० के समया सप्तास समया।

५ ३६ मनुष्यवि मिच्छ०-सोतसक०-नयनोक्त० सुब० अ० एषस०, उक्त० वेसमया सप्तास समया। वेस पयि०-विनिर्णयमगो। नगरि मनुष्यव्यवहार०-वत्तसक०-खरयोक्त० अय्य० अ० एषस०, उक्त० विणि पयि०-सादिरेयाणि पुन्यकोटिनिमागेन।

३० देशाग पारयर्मगो। नगरि मिच्छसस सम्मस०-सम्मापि०-सोतसक०-नयनोक्त० अय्य० अ० एषस०, उक्त० वेसीससामागेवमाणि। मयण०-नयण० एष पय। नगरि अय्यदर० सगह्वी देसणा। नोदिसियादि बाब सरस्साराणि विविधपुष्टविमगो।

प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक नीचोके जानना चाहिये। किन्तु इसी विधेयता है कि उन्नीस प्रकृतियों की सुबहार स्थितिभित्तिका अल्पकाल एक समय और एकलकाल सिध्यात्की अपेक्षा दो समय तथा दोपकी अपेक्षा सत्रह समय है।

५ ३६ सामान्य पर्याप्त और मनुष्य इन तीन प्रकारके मनुष्योंमें सिध्यात्त सोलह कपाय और नौ नोकपार्यों की सुबहार स्थितिभित्तिका अल्पकाल एक समय और एकलकाल सिध्यात्की अपेक्षा दो समय तथा दोपकी अपेक्षा सत्रह समय है। तथा दोप भी पंचेन्द्रिय विवेचक सिध्यात्त है। इसी विधेयता है कि मनुष्य पर्याप्तकेमें सत्रह कपाय और नौ नोकपार्यों की अपरन्तर स्थितिभित्तिका अल्पकाल एक समय और एकलकाल पूरकोविनिर्णयसे अधिक तीन पयस प्रमाण है।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय विवेक अल्पपर्याप्तकी भी मनुष्य मनुष्यद्वयसे अधिक नहीं होती, इसलिये इनमें सब प्रकृतियों की अपरन्तर स्थितिका एकलकाल मनुष्यद्वय कहा। तथा इनके नीचे और पुरुषवैदकी सुबहार स्थितिका एकलकाल अठारह समय मास न होकर सत्रह समय ही प्राप्त होता है। इसका विशेष ध्यान जिस प्रकार पंचेन्द्रिय विवेक आदि के कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिये। दोप कथन सुगम है। मनुष्य अल्पपर्याप्तकी पयस सब प्रकृतियों की सुबहार आदि स्थितियोंका काल पंचेन्द्रिय विवेक अल्पपर्याप्तकी समान ही होता है फिर भी छम्बीस प्रकृतियों की सुबहार स्थितिके एकलकाल कथनमें कुछ विशेषता है। बाब यह है कि मनुष्योंमें छठी और अठवीं ये दो मेर नहीं होते, अतः इनके सिध्यात्की सुबहार स्थितिका एकलकाल दो समय और सातह कपाय तथा नौ नोकपार्यों की सुबहार स्थितिका एकलकाल सत्रह समय ही प्राप्त होता है। एक प्रकृतियों की सुबहार स्थितिके एकलकाल के विषयमें यही कारण सामान्य पर्याप्त और कोमिमली मनुष्योंके जानना चाहिये। इन तीन प्रकारके मनुष्योंका दोप कथन पंचेन्द्रिय विवेकके समान है किन्तु मनुष्य पर्याप्तकेमें सत्रह कपाय और नौ नोकपार्यों की अपरन्तर स्थितिका एकलकाल एक पूर्वाह्निका विभाग अधिक तीन पयस है, क्योंकि जिस मनुष्य पर्याप्तके आगामी मयकी मनुष्यो नीचकर वृत्तन्तर आधिक सम्मर्थमगो प्राप्त कर दिया है उसके मनुष्य पर्याप्तक अवस्थाके रहते हुए एक कालकाल अपरन्तर स्थिति होती जाती है।

५ ५० देशीमें आरकिकोके समान जानना चाहिये। किन्तु इसी विधेयता है कि यहाँ सिध्यात्त सामान्य सम्मतिमान्य सोलह कपाय और नौ नोकपार्यों की अपरन्तर स्थितिभित्तिका अल्पकाल एक समय और एकलकाल वेसीस सामागे है। मयनवासी और अपरन्तर देशीमें इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इसी विधेयता है कि यहाँ अल्पपर्याप्तभित्तिका एकलकाल एक कथन अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है। न्योस्थितियों केकर सप्ताससप्तकोके देशीमें इसी विधेयता के



णवरि सोहम्मादिसु अप्पं ज० एगस०, उक्क० सगद्धिदी । आणदादि आव उवरिमगेवञ्जो  
त्ति मिच्छत्त पारसक०-णवणोक० अप्पद० जहणुक्क०-द्धिदी । अणंताणु०-चउक्क० अप्प-  
दर० जह० एयसमओ, उक्क० सगसगद्धिदी । अवत्तव्वं० ओघं । सम्मत्त-सम्मामि०  
अप्पं जह० एयस०, उक्क० सगसगद्धिदी । सेस० ओघं । अणुद्दिसादि आव सव्वङ्क-  
सिद्धि त्ति सव्वपयडी० अप्पं जहणुक्क० जहणुक्कस्सद्धिदी । णवरि सम्मत्त० अप्पदरस्स  
जह० एयस० । अणंताणु०-चउक्क० अप्पं जह० अंतोमु० ।

समान जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि सौधर्मादिक स्वर्गों में अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी स्थितिप्रमाण है । आनत कल्पसे लेकर उपरिम प्रवेयकतकके देवोंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकपायोंकी अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्यकाल जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्टकाल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अवक्तव्य स्थितिबिभक्तिका काल ओघके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । शेष कथन ओघके समान है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धतकके देवोंमें सब प्रकृतियों की अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य काल एक समय है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ।

**विशेषार्थ**—सर्वार्थसिद्धिके देवोंके सब प्रकृतियोंकी उत्तरोत्तर अल्पतर स्थिति ही होती है, इसलिये सामान्य देवोंके सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल तेतीस सागर कहा । भवन त्रिकमें सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते अतः यहाँ सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण प्राप्त होता है । तथा वारहवें स्वर्गतक सक्लेशानुसार स्थितिमें घटाबढी होती रहती है इसलिये यहाँ तक सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका जघन्य काल एक समय भी प्राप्त होता है । किन्तु वारहवें स्वर्गके ऊपर यद्यपि सब प्रकृतियोंकी स्थिति उत्तरोत्तर अल्प ही होती जाती है फिर भी नौ प्रवेयकतकके जीव सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों प्रकारके होते हैं । तथा सम्यग्दृष्टिसे मिथ्यादृष्टि भी होते हैं और मिथ्यादृष्टिसे सम्यग्दृष्टि भी । अतः यहाँ अनन्तानुबन्धी चतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति अल्पतर और अवक्तव्य दो प्रकारकी बन जाती है । किन्तु शेष कर्मों की एक अल्पतर स्थिति ही प्राप्त होती है । तदनुसार २२ प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका जघन्य काल अपनी-अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण प्राप्त होता है । किन्तु शेष छह प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका जघन्य काल एक समय भी बन जाता है, क्योंकि जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना की है ऐसा कोई एक जीव सासादनमें जाकर पहले समयमें अवक्तव्य स्थितिको प्राप्त हुआ और दूसरे समयमें अल्पतरस्थितिको प्राप्त करके यदि मर जाता है तो अनन्तानुबन्धीकी अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है । इसी प्रकार उद्वेलनाकी अपेक्षावक्त स्थानोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिका जघन्य काल एक समय बन जाता है । तथा अनुदिश आदिमें बाईस प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह तो स्पष्ट ही है । किन्तु शेष छह प्रकृतियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अल्पतर स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि वहाँ उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर जो अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना कर देता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अल्पतर स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त



मिच्छत्त० अप्प० मिच्छत्तभंगो । ] विगलित्थियअपज्जसाणमेवं चव । णवरि अप्पद० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० ।

§ ५६. पंचिदिय-पंचि०पज्जसाणमोघं । णवरि भुज० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि अट्ठारस समया । सम्म०-सम्मामि० अप्प० जह० एगसमयो<sup>१</sup> । पंचिदिय-अपज्ज० पंचि०तिरिक्खअपज्ज०भंगो ।

अल्पतर स्थितिविभक्तिका भंग मिथ्यात्वके समान हे । विकलेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके इसीप्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

**विशेषार्थ**—एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिका उत्कृष्टकाल दो समय अर्द्धाक्षय और संक्लेशक्षयकी अपेक्षासे कहा है । तथा सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल सत्रह समय जो दूसरी पृथिवीमें बतला आये हैं वह एकेन्द्रियों के भी बन जाता है, अतएव यहाँ उक्त प्रकृतियोंकी भुजगार स्थितिका काल दूसरी पृथिवीके समान कहा है । एकेन्द्रियोंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवक्तव्य व अवस्थित स्थिति नहीं होती, क्योंकि इनके ये पद सम्यग्दृष्टिके पहले समयमें ही सम्भव हैं । एकेन्द्रियोंमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल पत्यके असख्यातवें भाग प्रमाण है, क्योंकि जो पचेन्द्रिय जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर निरन्तर एकेन्द्रिय ही रहे आते हैं उन्हें सत्तामे स्थित स्थितिको घटाकर एकेन्द्रियके योग्य करनेमें पत्यका असख्यातवा भाग प्रमाण काल लगता है । मूलमें वादर एकेन्द्रिय आदि और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिये इनमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । इसी प्रकार पौचों स्थावरकाय वादर अपर्याप्त तथा सूक्ष्म पर्याप्त और सूक्ष्म अपर्याप्त जीवोंके भी जानना चाहिये । वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, विकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका उत्कृष्टकाल सख्यात हजार वषे है इसलिये इनमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल सख्यात हजार वषे कहा । तथा विकलेन्द्रिय अपर्याप्तकोंका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ५६ पचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके ओघके समान जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें भुजगारका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल मिथ्यात्वकी अपेक्षा तीन समय तथा शेषकी अपेक्षा अठारह समय है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय है । पचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिए ।

**विशेषार्थ**—पचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें सञ्ज्ञी और असञ्ज्ञी दोनों भेद सम्मिलित हैं, अतः इनमें मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिका उत्कृष्टकाल तीन समय तथा सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल अठारह समय बन जाता है । इन तीन और अठारह समयोंका विशेष खुलासा पहले किया ही है उसी प्रकार यहाँ भी जान लेना चाहिये । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षा प्राप्त होता है । इस प्रकार यहाँ उक्त कथनमें ओघसे विशेषता है । शेष सब कथन ओघके समान है ।





मप्पदरस्स च ज० एगसमओ, उक्क० बावीम वस्ससहस्साणि देसणाणि । सेसमोघं । ओरालियमिस्स० मिच्छत्त० भुज० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि समया । अप्पद० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सोलसक०-णव-  
णोक० भुज० ज० एगस०, उक्क० अट्ठारस समया । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अप्प० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सम्मत्त-सम्मामि० अप्प० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । वेउच्चियमिस्स० अट्ठावीमपयडीणमप्प० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सेस० विदियपुढविभंगो । णवरि पदविसेसो जाणियव्वो । आहारकाय० सव्वपय० अप्प० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । आहारमिस्स० सव्वपय० अप्प० जहण्णुक० अंतोमु० । एवमुवसमसम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं । कम्महय० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० भुज० ज० एगसमओ, उक्क० वे समया । अप्प०-अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया । सम्मत्त-सम्मामि० अप्प० ज० एगस० । उक्क० तिण्णि समया । एवमणाहार० ।

सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। शेषकथन श्रोधके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय हैं। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अठारह समय हैं। अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। वैक्रियिकमिश्रकाय-योगियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। शेषका भग दूसरी पृथिवीके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि पदविशेष जानना चाहिये। आहारककाययोगियोंमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। आहारकमिश्रकाययोगियोंमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। कर्मणकाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय हैं। अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय हैं। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

**विशेषार्थ**—पौंचों मनोयोग, पौंचों वचनयोग और वैक्रियिककाययोगका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। औदारिककाययोगका उत्कृष्टकाल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है, अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम बाईस हजार वर्ष कहा। औदारिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें भी इसी प्रकार समझना चाहिये। तथा इसी प्रकार आहारककाययोग और आहारकमिश्र-



ज० एगस०, उक० अंतोमु० । एवमकसा०-सुहुम०-जहाक्सादसंजदे चि ।

§ ६४. चत्वारिक० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० भुज०-  
अवट्टि० सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०-चउक० अवत्तव्व० ओधं । अप्प० ज० एगस०,  
उक० अंतोमु० ।

§ ६५. मदि०-सुद० मिच्छत्त-सोलसक० णवणोक० भुज०-अवट्टि० ओधं । अप्प०  
ज० एगस०, उक० एकत्तीसं सागरो० सादिरेयाणि । सम्मत्त-सम्मामि० अप्पद०

सागर है । शेष कथन ओघके समान है । अपगतवेदियोंमे चौबीस प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थिति-  
विभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अकषायी,  
सूक्ष्मसापराधिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६४ क्रोधादि चारों कषायवाले जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय  
और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थिति-विभक्तिका तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व  
और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थिति-विभक्तिका काल ओघके समान है । अल्पतर  
स्थिति-विभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

**विशेषार्थ**—वेदमार्गणामें निम्न बातें ध्यान देने योग्य हैं । पहली तो यह कि विवक्षित वेदमें  
उस वेदके अतिरिक्त शेष वेदोंकी भुजगार स्थितिका उत्कृष्टकाल सत्रह समय होता है । दूसरी यह  
कि यद्यपि स्त्रीवेदी आदिका उत्कृष्टकाल सौ पत्य पृथक्त्व आदि है फिर भी इनमें मिथ्यात्व आदिकी  
अल्पतर स्थितिका काल उस वेदके उत्कृष्टकाल प्रमाण नहीं है । इनमेंसे स्त्रीवेदमें मिथ्यात्व आदि  
छत्वीस प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका काल कुछ कम पचवन पत्य है, क्योंकि यहाँ सम्यग्दर्शन ६१ जो  
उत्कृष्टकाल है वही यहाँ उक्त प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल प्राप्त होता है । किन्तु सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिथ्यात्वके विषयमें स्थिति इससे भिन्न है । बात यह है कि इनकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्ट-  
काल सम्यक्त्व व मिथ्यात्वके क्रमसे प्राप्त होते रहनेसे होता है और स्त्रीवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ही उत्पन्न  
होता है अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल साधिक पचवन पत्य प्राप्त  
होता है । तथा ओघमें सब प्रकृतियोंको जो भुजगार आदि स्थिति कही है वह अधिकतर पुरुषवेद-  
की प्रधानतासे ही घटित होती है । पंचेन्द्रियोंमें भी वह अविकल बन जाती है, क्योंकि पुरुषवेदी  
पंचेन्द्रिय ही होते हैं, अतः यहाँ पुरुषवेदमें भुजगार स्थिति आदिका काल पंचेन्द्रियोंके समान कहा ।  
तथा नपुंसकवेदमें २६ प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर है, क्योंकि  
यहाँ सम्यग्दर्शनका जो उत्कृष्टकाल है वही उक्त प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल है । तथा  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर है । विशेष  
खुलासा जिस प्रकार स्त्रीवेदियोंके कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिये । शेष कथन  
सुगम है । अपगतवेदमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थिति ही होती है । तथा इसका जघन्यकाल  
एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल  
एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । इसी प्रकार अकषायी, सूक्ष्मसापराधिकसंयत और  
यथाख्यातसंयत जीवोंके भी घटित कर लेना चाहिये । तथा क्रोधादि चारों कषायोंकी अल्पतर स्थिति  
का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त  
कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ६५. मत्यज्ञानी और अज्ञानी जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी  
भुजगार और अवस्थित स्थिति-विभक्तिका काल ओघके समान है । तथा अल्पतर स्थिति-विभक्तिका

१ ता० प्रती सागरो० देसूणाणि इति पाठः ।

गा० २२ ]

ज०

एगस०,

एकत्तीसं

पल्लो०

§ ६६.

उक० अंतोमु०

अप्प० ज०

मदि० म०

एवं संजदे

चउतीसपय०

तेतीसं सागरे

जघन्यकाल एक

अल्पतर स्थिति

प्रमाण है । निम्न

जघन्यकाल एक

विभक्तिका काल

उत्कृष्टकाल कुछ

का जघन्यकाल

§ ६६ अ

और नौ नोकषाय

कषासठ सागर है

है । सम्यक्त्व

काल साधिक ६५

नपुंसकवेदमें

उत्कृष्टकाल कुछ

नपुंसकवेदमें

संयत और अज्ञानी

एक समय है ।

स्थिति-विभक्तिका

जघन्यकाल एक

कोई मिथ्यादृष्टि

अतः मत्यज्ञानी

उत्कृष्टकाल सा

इसलिये इसमें

तथा मिथ्यादृष्टिके

१ ता०

येन बाधेन प्रकृतियों का बलप्रति  
बलप्रति है। इसी बल प्रकृतियों  
का बाध है।

समस्त, सम्मिश्रण, बोध  
रम्यता तथा सत्य, सम्मिश्रण  
या वायु वायु के समान है। कल  
हस्ताक्षर है।

न्य है। गङ्गा का यह किर्किज सि  
इसका स्वयं समर हुआ है। इसी  
जड़ है फिर भी इसी सिप्यर का  
तो है। इसमें बीताने सिप्यर का  
न पन्ना है क्योंकि यह समुद्रसंग्रह  
। उन्मुक्तान वन क्षेत्र है। किन्तु कल  
र है कि इसी भारत सिप्यर का  
प्रति सीत प्रसि सिप्यर का और ही  
न। उन्मुक्तान सिप्यर का वन का  
। उन्मुक्तान सिप्यर का वन का

नहीं मिले।  
स्थिति खरी है पर बाधित नहीं।  
बाधित बन जाली है, बर्तन मुक्त है।  
बाधित कम बर्तन मुक्त है।  
गुण कम गुण कम होता कम है, बर्तन  
। बर्तन स्थिति कम गुण कम है।  
गुण बाधित बर्तन कम है।  
गुण ही कम कम बर्तन है।

‘न हो जाती है।’ उवाइका ने कहा  
‘इन लोगों को अलग सिविलियन बल्लभ  
अकबादी, तुम्हें समझा रहा है कि उन्हें कोई  
आधार नहीं बापों कब्रों में अलग सिविली  
अलग सिविलियन बल्लभ अकबादी

२. महत्त्व कल्पन और चौ कोणकाली मान है। तथा अत्यन्त स्थितिनिर्वाण

५ ११ आसिनि-सुद-बोहि-मिच्छ-सोत्सुक-जवयोक्त-अप्य-स-अतोष्टु,  
उक्त-आवहिसागरोत्तमाणि सादितेर्याणि । जवति जवयाष्टु-देष्टु । सम्म-सम्मानि-  
अप्य-स-अतोष्टु, उक्त-छावहिसागरो-सादितेर्याणि । सुव-भवति-अवच-  
जति । यज्यज-अद्वीस पय-अप्य-जह-अतोष्टु, उक्त-पुन्यकोटी देष्टु ।  
एव-संज-सामाज्य-छेदोक्त-परिहृत-संजदसंजदापि । जवति सामाज्य-छेदोक्त-  
जवतीसपय-अप्य-जह-एवसमजो-असंज-जोपर्मो । जवति अप्य-सादितेर्य  
तेषोस सागरोत्तमाणि । सम्म-अप्य-जह-एवसमजो ।

बधन्यकास एक समय और छलुङकास साधिक इन्दीस सागर है । सम्यक्स और सम्यगम्यात्सकी बसलर त्वाविधिष्यिष्ठा बधन्यकास बग्गमुत्त और छलुङकास पसोमके अरुस्यतातें भाग प्रसात है । विंसाहाविष्ठातें मिष्यत्स, साहास कथय और नो नोकार्याकी मुजगर त्वाविधिष्यिष्ठा बधन्यकास एक समय और छलुङकासका संग लूरी प्रविषोके समात है । अस्वितर त्वाविधिष्यिष्ठाका आयेके समात है । तका बसलर त्वाविधिष्यिष्ठाका बधन्यकास एक समय और छलुङकास कुल संग इन्दीस सागर है । सम्यक्स और सम्यगम्यात्सकी बसलर त्वाविधिष्यिष्ठाका बधन्यकास एक समय और छलुङकास पसोमस अरुस्यतातें भाग प्रसात है ।

§ ११ आर्यितोनामिकपदानी, मुद्रापानी और वायुपित्तानी बलिमें स्थिताल सोहद करल और नौ मोरुपायोंक असतर स्थितिविधिपछका बन्धनकल अन्तमुहूर्त और ब्रह्मरक्ष साधिक ब्रह्मस्तुत सागर है। किन्तु इतनी विरोधता है कि अन्तमुहूर्तकी अपेक्षा कुछ कम द्वापरात सागर है। समस्तक और सम्मान्यजातिकी असतर स्थितिविधिपछका बन्धनकल अन्तमुहूर्त और ब्रह्मरक्ष साधिक ब्रह्मस्तुत सागर है। यहाँ मुद्रापान, वायुपित्त और वायुपित्त विधिपछा नहीं है। मन्त्रपदप्राप्तियोंमें ब्रह्मरक्ष मन्त्रियोंकी असतर स्थितिविधिपछका बन्धनकल अन्तमुहूर्त और ब्रह्मरक्ष कुछ कम पूर्णकारि प्रमाण है। इसी प्रमाण संवत् सामासिकसंघत, ज्योतिष्यमानासंघत पण्डितसंघतसंघत और संघतसंघत बीबीक बान्ना बाहिर। किन्तु इतनी विरोधता है कि सामासिक संघत और ज्योतिष्यमाना संघत बीबीमें ज्योतिष्य पण्डितोंकी असतर स्थितिविधिपछका बन्धनकल एक समान है। अर्धतानोंमें और एक समान योग है। किन्तु इतनी विरोधता है कि इन्में असतर स्थितिविधिपछका ब्रह्मरक्ष साधिक देवीत सागर है। तथा सम्यक्त्वकी असतर स्थितिविधिपछका बन्धनकल एक समान है।

सिद्धिपार्थ—जोब मैरेयकम मिष्यात्त बाबिकी अप्परतर स्थिति होली है। अब यदि बर्षा कोई मिष्यापट्टी बीज लक्ष्मण हुवा तो रुक्ये बाबि और अप्परमें ती अप्परतर स्थिति प्राप्त बाती। अब मर्यादापट्टी और गाभादा बीजकें मिष्यात्त बाबि लक्ष्मीत अप्परतर स्थिति बाबि लक्ष्मणपट्टा बाबि लक्ष्मीत सारार कता। तथा मिष्यात्त अप्परमें अप्परतममें नती तथा बादा, लक्ष्मीत हुसम कृष्णतिर्की अप्परतर स्थिति बाबि लक्ष्मणपट्टा हुसम कृष्णति सारार कता। तथा मिष्यापट्टिके लक्ष्मण और सम्यमिष्यात्त की तथा पर्यक् अर्न्तकर्ममें आग प्रयास करलत।

§ ७०. सण्णि० पंचिदियभंगो। एवमाहारीणं। णरि सण्णि० मिच्छ०-सोलसक०-  
णवणो० भुज० उक्क० वे सत्तारस समया। असण्णि० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-  
सोलसक०-णवणो० अप्पदर ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। सेस०  
ओरालियमिस्स०भंगो।

एवं कालाणुगमो समत्तो।

\* अंतरं।

§ ७१. सुगममेदं, अहियारसंभालणफलत्तादो।

\* मिच्छत्तस्स भुजगार-अवट्ठिदकम्मंसियस्स अंतरं जहएणेण एगसमओ।

§ ७२. कुदो ? भुजगार अवट्ठिदविहत्तीओ एगसमयं कादूण विदियसमए अप्पदरं  
करिय तदियसए भुजगार-अवट्ठिदेसु एगसमयमेतंतत्तुवलंभादो।

\* उक्कस्सेण तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं।

§ ७३. त जहा—तिरिखेसु मणुस्सेसु वा भुजगार-अवट्ठिदाणमादिं कादूण पुणो  
तत्थेव अंतोमुहुत्तकालमप्पदरेणंतरिय तिपलिदोमिणसुप्पजिय तेवट्ठिसागरोवमसदं भमिय  
मणुस्सेसुप्पजिय अंतोमुहुत्ते गदे संकिलेस पूरेदूण भुज०-अवट्ठि०कदेसु लद्धमंतरं होदि।

§ ७० सजी जीवोंके पचेन्द्रियोंके समान भग है। इसी प्रकार आहारक जीवोंके जानना चाहिए।  
किन्तु इतनी विशेषता है कि सजियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी भुजगार  
स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल मिथ्यात्वकी अपेक्षा दो समय और शेषकी अपेक्षा सत्रह समय है।  
असक्षियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी अल्पतर  
स्थितिविभक्तिका जवन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है।  
तथा शेष भग औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

\* आगे अन्तरानुगमका अधिकार है।

§ ७१ यह सूत्र सुगम है, क्योंकि अधिकारकी सन्धाल करना इसका फल है।

\* मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवका जघन्य  
अन्तरकाल एक समय है।

§ ७२ क्योंकि जो कोई जीव भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंको एक समय तक  
करके और दूसरे समयमें अल्पतर स्थितिविभक्ति करके यदि तीसरे समयमें पुनः भुजगार और  
अवस्थित विभक्तियों करते हैं तो उनके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका केवल  
एक समय अन्तर पाया जाता है।

\* उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एकसौ त्रेसठ सागर है।

§ ७३ उसका खुलासा इस प्रकार है—जिन्होंने तिर्यच और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर भुजगार  
और अवस्थितस्थितिविभक्तिका प्रारम्भ किया। पुनः वहाँ पर अन्तर्मुहूर्त कालतक अल्पतर स्थिति-  
विभक्तिसे उन्हें अन्तरित किया। पुनः वे तीन पल्यकी आयुवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर और  
एकसौ त्रेसठ सागर कालतक परिभ्रमण करके मनुष्योंमें उत्पन्न हुए और वहाँ पर उन्होंने अन्तर्मुहूर्त  
कालके बाद सकलेशकी पूति करके भुजगार और अवस्थित विभक्तियोंको किया। इस प्रकार भुजगार  
और अवस्थित विभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एकसौ त्रेसठ सागर प्राप्त होता है।

५७१. ५७२. ५७३. ५७४. ५७५. ५७६. ५७७. ५७८. ५७९. ५८०. ५८१. ५८२. ५८३. ५८४. ५८५. ५८६. ५८७. ५८८. ५८९. ५९०. ५९१. ५९२. ५९३. ५९४. ५९५. ५९६. ५९७. ५९८. ५९९. ६००. ६०१. ६०२. ६०३. ६०४. ६०५. ६०६. ६०७. ६०८. ६०९. ६१०. ६११. ६१२. ६१३. ६१४. ६१५. ६१६. ६१७. ६१८. ६१९. ६२०. ६२१. ६२२. ६२३. ६२४. ६२५. ६२६. ६२७. ६२८. ६२९. ६३०. ६३१. ६३२. ६३३. ६३४. ६३५. ६३६. ६३७. ६३८. ६३९. ६४०. ६४१. ६४२. ६४३. ६४४. ६४५. ६४६. ६४७. ६४८. ६४९. ६५०. ६५१. ६५२. ६५३. ६५४. ६५५. ६५६. ६५७. ६५८. ६५९. ६६०. ६६१. ६६२. ६६३. ६६४. ६६५. ६६६. ६६७. ६६८. ६६९. ६७०. ६७१. ६७२. ६७३. ६७४. ६७५. ६७६. ६७७. ६७८. ६७९. ६८०. ६८१. ६८२. ६८३. ६८४. ६८५. ६८६. ६८७. ६८८. ६८९. ६९०. ६९१. ६९२. ६९३. ६९४. ६९५. ६९६. ६९७. ६९८. ६९९. ७००. ७०१. ७०२. ७०३. ७०४. ७०५. ७०६. ७०७. ७०८. ७०९. ७१०. ७११. ७१२. ७१३. ७१४. ७१५. ७१६. ७१७. ७१८. ७१९. ७२०. ७२१. ७२२. ७२३. ७२४. ७२५. ७२६. ७२७. ७२८. ७२९. ७३०. ७३१. ७३२. ७३३. ७३४. ७३५. ७३६. ७३७. ७३८. ७३९. ७४०. ७४१. ७४२. ७४३. ७४४. ७४५. ७४६. ७४७. ७४८. ७४९. ७५०. ७५१. ७५२. ७५३. ७५४. ७५५. ७५६. ७५७. ७५८. ७५९. ७६०. ७६१. ७६२. ७६३. ७६४. ७६५. ७६६. ७६७. ७६८. ७६९. ७७०. ७७१. ७७२. ७७३. ७७४. ७७५. ७७६. ७७७. ७७८. ७७९. ७८०. ७८१. ७८२. ७८३. ७८४. ७८५. ७८६. ७८७. ७८८. ७८९. ७९०. ७९१. ७९२. ७९३. ७९४. ७९५. ७९६. ७९७. ७९८. ७९९. ८००. ८०१. ८०२. ८०३. ८०४. ८०५. ८०६. ८०७. ८०८. ८०९. ८१०. ८११. ८१२. ८१३. ८१४. ८१५. ८१६. ८१७. ८१८. ८१९. ८२०. ८२१. ८२२. ८२३. ८२४. ८२५. ८२६. ८२७. ८२८. ८२९. ८३०. ८३१. ८३२. ८३३. ८३४. ८३५. ८३६. ८३७. ८३८. ८३९. ८४०. ८४१. ८४२. ८४३. ८४४. ८४५. ८४६. ८४७. ८४८. ८४९. ८५०. ८५१. ८५२. ८५३. ८५४. ८५५. ८५६. ८५७. ८५८. ८५९. ८६०. ८६१. ८६२. ८६३. ८६४. ८६५. ८६६. ८६७. ८६८. ८६९. ८७०. ८७१. ८७२. ८७३. ८७४. ८७५. ८७६. ८७७. ८७८. ८७९. ८८०. ८८१. ८८२. ८८३. ८८४. ८८५. ८८६. ८८७. ८८८. ८८९. ८९०. ८९१. ८९२. ८९३. ८९४. ८९५. ८९६. ८९७. ८९८. ८९९. ९००. ९०१. ९०२. ९०३. ९०४. ९०५. ९०६. ९०७. ९०८. ९०९. ९१०. ९११. ९१२. ९१३. ९१४. ९१५. ९१६. ९१७. ९१८. ९१९. ९२०. ९२१. ९२२. ९२३. ९२४. ९२५. ९२६. ९२७. ९२८. ९२९. ९३०. ९३१. ९३२. ९३३. ९३४. ९३५. ९३६. ९३७. ९३८. ९३९. ९४०. ९४१. ९४२. ९४३. ९४४. ९४५. ९४६. ९४७. ९४८. ९४९. ९५०. ९५१. ९५२. ९५३. ९५४. ९५५. ९५६. ९५७. ९५८. ९५९. ९६०. ९६१. ९६२. ९६३. ९६४. ९६५. ९६६. ९६७. ९६८. ९६९. ९७०. ९७१. ९७२. ९७३. ९७४. ९७५. ९७६. ९७७. ९७८. ९७९. ९८०. ९८१. ९८२. ९८३. ९८४. ९८५. ९८६. ९८७. ९८८. ९८९. ९९०. ९९१. ९९२. ९९३. ९९४. ९९५. ९९६. ९९७. ९९८. ९९९. १०००.

ग्रीन। बरति सन्धि० विच्छेद-मोक्ष-  
। बरति० विच्छेद-सन्धि-मोक्ष-  
उक्त० इति० कर्त्त०-रत्न०।

ते सवन्ति।

। त्रि०।  
। त्रिपुस्तक अंतरं अत्रैकैव स्थलमे  
। एतत्प्रकारेण अत्र विवेकस्तत्र न  
स्वरूपमहो।

विरप।  
। अथवा अत्रैकैव स्थलमे  
। एतत्प्रकारेण अत्र विवेकस्तत्र न  
स्वरूपमहो।

। त्रि०।  
। त्रिपुस्तक अंतरं अत्रैकैव स्थलमे  
। एतत्प्रकारेण अत्र विवेकस्तत्र न  
स्वरूपमहो।

। त्रि०।  
। त्रिपुस्तक अंतरं अत्रैकैव स्थलमे  
। एतत्प्रकारेण अत्र विवेकस्तत्र न  
स्वरूपमहो।

। त्रि०।  
। त्रिपुस्तक अंतरं अत्रैकैव स्थलमे  
। एतत्प्रकारेण अत्र विवेकस्तत्र न  
स्वरूपमहो।

। त्रि०।  
। त्रिपुस्तक अंतरं अत्रैकैव स्थलमे  
। एतत्प्रकारेण अत्र विवेकस्तत्र न  
स्वरूपमहो।

। त्रि०।  
। त्रिपुस्तक अंतरं अत्रैकैव स्थलमे  
। एतत्प्रकारेण अत्र विवेकस्तत्र न  
स्वरूपमहो।

॥ अथवरकर्मसिपयस्स अंतरं केचिन् कासापो होवि ?

॥ ७४ ॥ सुगममेदं ।

॥ अथवरकर्मसिपयस्स अंतरं केचिन् कासापो होवि ?

॥ ७५ ॥ कुदो ! मिच्छत्तस्स अप्पदर करेमायेण सुवमारमवहिदं वा एगसमय  
कात्थ पुणो उदिपसमप अप्पदरे कदे एगसमयमेवत्तल्लमादो ।

॥ उक्त्तस्येय अंगोमुत्तुत्त ।

॥ ७६ ॥ कुदो ! अप्पदर करेयेय सुदं—अवहिदपि अंगोमुत्तुत्त कात्थ अप्पदरे  
कदे अंगोमुत्तुत्तमेवत्तल्लमादो ।

॥ सेसायं पि येदम्भं ।

॥ ७७ ॥ बहा मिच्छत्तस्स गोदं सदा सेसपयीन पि येदम्भं । एव बुप्पिस्सुत्तारियण  
अन्दिपयस्स उच्चारणमस्सिदण पक्कण कत्तमादो ।

॥ ७८ ॥ अत्रात्रुमयेण दुविदो विदेसो—आयेण आयेयेण य । तस्य भीयेण मिच्छत्त  
वारत्तकं—यममोदं सुदं—अवहिदं नं एगसं उक्तं वेवहिदसागरोबमसदं सदि  
रेप । अप्पदरं नं एगसं, उक्तं अंगोमुत्तुत्तं । अथवा—उत्तुत्तं सुदं—अवहिदं

॥ मिप्यात्तकी अथवरस्थितिभिन्नस्थितौ जीवका अन्तरकालं कितना है ?

॥ ७४ ॥ यह सुत्र सुगम है ।

॥ अथवा अन्तरकाल एक समय है ।

॥ ७५ ॥ क्योंकि मिप्यात्तकी अथवर स्थितिभिन्नस्थितौ करमेवत्तल्ल जिस जीवम एक समयके  
सिप सुगम वा अवस्थित स्थितिभिन्नस्थितौ किया पुन जीवने समय में यदि यह अथवर स्थिति-  
भिन्नस्थितौ करता है तो उसके अथवर स्थितिभिन्नस्थितौ एक समय अन्तर पाया जाता है ।

॥ उक्तस्य अन्तरकाल अंगोमुत्तुत्त है ।

॥ ७६ ॥ क्योंकि अथवर स्थितिभिन्नस्थितौ करमेवत्तल्ल जिस जीवमे अन्तर्मुत्तुत्त कालक सुक-  
गार और अवस्थित स्थितिभिन्नस्थितौ किया । पुन कदे अन्तर्मुत्तुत्त कालके बाद अथवर  
स्थितिभिन्नस्थितौ करमेवत्तल्ल मिप्यात्तकी अथवर स्थितिभिन्नस्थितौ अन्तरकाल अन्तर्मुत्तुत्त प्राप्त होता है ।

॥ इसी प्रकार छेप प्रकृतियोंका भी अन्तरकाल जानना चाहिए ।

॥ ७७ ॥ जिस प्रकार मिप्यात्तका अन्तरकाल कहा उसी प्रकार छेप प्रकृतियोंका भी अन्तर  
चाहिए । इस प्रकार बुद्धिपूर्वक कहा अथवरस्थितिभिन्नस्थितौ द्वारा सुचित हुए अथवा अथवरस्थिति-  
भिन्नस्थितौ करमेवत्तल्ल करत है—

॥ ७८ ॥ अथवरसुगमकी अथवा निर्देसा को अथवाकाह—आयेनिर्देसा और आयेनिर्देसा ।  
कर्मसे आयेकी अथवा मिप्यात्त, आह कथा और नो आयेनिर्देसा सुगम और अवस्थित  
स्थितिभिन्नस्थितौ अथवा अन्तर एक समय और उक्त अथवा आयेनिर्देसा सुगम है ।  
अथवर स्थितिभिन्नस्थितौ अथवा अन्तर एक समय और उक्त अथवा अन्तर्मुत्तुत्त है । अथवा-  
सुगमकी अथवा सुगम और अवस्थित स्थितिभिन्नस्थितौ मंग मिप्यात्तक समान है । अथवर  
स्थितिभिन्नस्थितौ अथवा अन्तर एक समय और उक्त अन्तर सुदं कदा वा एगसत्त सागर है ।

§ ६७. चक्रु० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० भुज०-अवट्टि० अणंताणु०-चउक्क०<sup>१</sup>  
अवत्तव्व० ओघं । अप्प० ज० एगस०, उक्क० तेवट्टिसागरोवमसदं सादिरेयं ।  
सम्मत्त-सम्मामि० भुज०-अवट्टि०-अवत्तव्वमोघं । अप्प० ज० एगस०, उक्क० वे  
छावट्टिसागरो० सादिरेयाणि । ओहिदंस० ओहिणाणिभंगो ।

ही पाई जाती है अत उक्त तीनों अज्ञानोंमें इन दो प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल पल्यके असल्यातवे भागप्रमाण कहा । आभिनिवोधकज्ञान आदि सम्यग्ज्ञानोंमें केवल अल्पतर स्थिति ही पाई जाती है । किन्तु मनःपर्ययज्ञानको छोड़कर इनका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक छयासठ सागर है इसलिये इनमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक छयासठ सागर कहा । किन्तु अनन्तानुबन्धी चतुष्क इसका अपवाद है । बात यह है कि वेदक सम्यक्त्वके साथ अनन्तानुबन्धीका सत्त्व कुछ कम छयासठ सागर तक ही पाया जाता है इसलिये इसकी अल्पतरस्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम छयासठ सागर कहा । तथा मनःपर्ययज्ञानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है, अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण कहा । मनःपर्ययज्ञानके समान सयत आदि मार्गणाओंमें भी जानना चाहिये, क्योंकि इनका जघन्य और उत्कृष्टकाल मनःपर्ययज्ञानके समान है । इतनी विशेषता है कि सामायिक और छेदोपस्थानाका जघन्यकाल एक समय भी है जो कि उपशान्तमोहसे च्युत हुए जीवके ही सम्भव है, क्योंकि ऐसा जाव एक समय तक अनिष्टुत्तिकरण गुणस्थानमें रहा और मरकर यदि देव हो जाता है तो उसके सामायिक और छेदोपस्थापना सयमका जघन्यकाल एक समय पाया जाता है । पर यहाँ २४ प्रकृतियोंकी सत्ता ही सम्भव है, अतः २४ प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय कहा । असयत मार्गणामें और सब काल तो ओघके समान बन जाता है किन्तु सब प्रकृतियोंकी अल्पतरस्थितिका उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है । बात यह है कि अचिरतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है, अतः असयममें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा । तथा यहाँ कृतकृत्यवेदककी अपेक्षा सम्यक्त्वकी अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है ।

§ ६७ चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिबिभक्तिका काल ओघके समान है । अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल साधिक एक सौ त्रेसठ सागर है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिबिभक्तियोंका काल ओघके समान है । तथा अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल साधिक एक सौ वत्तीस सागर है । अवधिदर्शनवाले जीवोंका भग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है ।

**विशेषार्थ—**चक्षुदर्शनमार्गणाका काल यद्यपि दो हजार सागर है पर इसमें अल्पतर स्थितिका काल इतना नहीं प्राप्त होता, इसलिये यह कहा है कि चक्षुदर्शनमें २६ प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल साधिक एक सौ त्रेसठ सागर है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल साधिक एक सौ वत्तीस सागर है ।

१ सा० प्रसौ चउक्क० [ ओघ ] अवत्तव्व० इति पाठः ।





§ ७०. सण्णि० पंचिदियभंगो। एवमाहारीणं। णवरि सण्णि० मिच्छ०-सोलसक०-  
णवणोक० भुज० उक्क० वे सत्तारस समया। असण्णि० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-  
सोलसक०-णवणोक० अप्पदर ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो। सेस०  
ओरालियमिस्स० भंगो।

एवं कालाणुगमो समत्तो।

\* अंतरं।

§ ७१. सुगममेदं, अहियारसंभालणफलत्तादो।

\* मिच्छत्तस्स भुजगार-अवट्टिदकम्मंसियस्स अंतरं जहएणेण एगसमओ।

§ ७२. कुदो ? भुजगार अवट्टिदविहत्तीओ एगसमयं कादूण विदियसमए अप्पदरं  
करिय तदियसए भुजगार-अवट्टिदेसु एगसमयमेत्तं तरुवलं भादो।

\* उक्कस्सेण तेवट्टिसागरोवमसदं सादिरेयं।

§ ७३. तं जहा—तिरिखेसु मणुस्सेसु वा भुजगार-अवट्टिदाणमादिं कादूण पुणो  
तत्थेव अंतोमुट्टकालमप्यदरेणंतरिय तपलिदोमिणुसुप्पजिय तेवट्टिसागरोवमसदं भमिय  
मणुस्सेसुप्पजिय अंतोमुट्टे गदे संकिलेसं पूरेदूण भुज०-अवट्टि० कदेसु लद्धमंतरं होदि।

§ ७० सजी जीवोंके पचेन्द्रियोंके समान भग है। इसी प्रकार आहारक जीवोंके जानना चाहिये।  
किन्तु इतनी विशेषता है कि सजियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी भुजगार  
स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल मिथ्यात्वकी अपेक्षा दो समय और शेषकी अपेक्षा सत्रह समय है।  
असजियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी अल्पतर  
स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पत्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है।  
तथा शेष भग औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

\* आगे अन्तरानुगमका अधिकार है।

§ ७१ यह सूत्र सुगम है, क्योंकि अधिकारकी सम्हाल करना इसका फल है।

\* मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवका जघन्य  
अन्तरकाल एक समय है।

§ ७२ क्योंकि जो कोई जीव भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंको एक समय तक  
करके और दूसरे समयमें अल्पतर स्थितिविभक्ति करके यदि तीसरे समयमें पुनः भुजगार और  
अवस्थित विभक्तियों करते हैं तो उनके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका केवल  
एक समय अन्तर पाया जाता है।

\* उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एकसौ त्रेसठ सागर है।

§ ७३ उसका खुलासा इस प्रकार है—जिन्होंने तिर्यच और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर भुजगार  
और अवस्थितस्थितिविभक्तिका प्रारम्भ किया। पुनः वहीं पर अन्तर्मुहूर्त कालतक अल्पतर स्थिति-  
विभक्तिसे उन्हें अन्तरित किया। पुनः वे तीन पत्यकी आयुवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर और  
एकसौ त्रेसठ सागर कालतक परिभ्रमण करके मनुष्योंमें उत्पन्न हुए और वहाँ पर उन्होंने अन्तर्मुहूर्त  
कालके बाद सकलेशकी पूति करके भुजगार और अवस्थित विभक्तियोंको किया। इस प्रकार भुजगार  
और अवस्थित विभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एकसौ त्रेसठ सागर प्राप्त होता है।

५७२.

५७५.

५७६.

५७७.

५७८.

५७९.

५८०.

५८१.

५८२.

५८३.

५८४.

५८५.

५८६.

५८७.

५८८.

५८९.

५९०.

५९१.

५९२.

५९३.

५९४.

५९५.

५९६.

५९७.

५९८.

५९९.

६००.

न। पारि सन्नि। निच-भेत्त-  
अन्नि। निच-भेत्त-  
वह। पतिता। अन्नि। गन्नि।  
अन्नि।

न।  
सिपस्य अन्नि। अन्नि।  
अन्नि। अन्नि।  
अन्नि।

न।  
अन्नि। अन्नि।  
अन्नि। अन्नि।

न।  
अन्नि। अन्नि।  
अन्नि। अन्नि।

न।  
अन्नि। अन्नि।  
अन्नि। अन्नि।

न।  
अन्नि। अन्नि।  
अन्नि। अन्नि।

न।  
अन्नि। अन्नि।  
अन्नि। अन्नि।

१. अन्नि। अन्नि।  
२. अन्नि। अन्नि।  
३. अन्नि। अन्नि।  
४. अन्नि। अन्नि।  
५. अन्नि। अन्नि।  
६. अन्नि। अन्नि।  
७. अन्नि। अन्नि।  
८. अन्नि। अन्नि।  
९. अन्नि। अन्नि।  
१०. अन्नि। अन्नि।

१. अन्नि। अन्नि।  
२. अन्नि। अन्नि।  
३. अन्नि। अन्नि।  
४. अन्नि। अन्नि।  
५. अन्नि। अन्नि।  
६. अन्नि। अन्नि।  
७. अन्नि। अन्नि।  
८. अन्नि। अन्नि।  
९. अन्नि। अन्नि।  
१०. अन्नि। अन्नि।



§ ७०. सण्णि० पंचिदियभंगो। एवमाहारीणं। णपरि सण्णि० मिच्छ०-सोलसक०-  
णवणो० भुज० उक्क० वे सत्तारस समया। असण्णि० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-  
सोलसक०-णवणो० अप्पदर ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो। सेस०  
ओरालियमिस्स० भंगो।

एवं कालाणुगमो समत्तो।

\* अंतरं।

§ ७१. सुगममेदं, अहियारसंभालणफलत्तादो।

\* मिच्छत्तस्स भुजगार-अवट्ठिदकम्मंसियस्स अंतरं जहण्णेण एगसमओ।

§ ७२. कुदो ? भुजगार अवट्ठिदविहत्तीओ एगसमयं कादूण विदियसमए अप्पदरं  
करिय तदियसए भुजगार-अवट्ठिदेसु एगसमयमेत्तंतत्तुवलंभादो।

\* उक्कस्सेण तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं।

§ ७३. त जहा—तिरिक्खेसु मणुस्सेसु वा भुजगार-अवट्ठिदाणमादिं कादूण पुणो  
तत्थेव अंतोमुहुत्तकालमप्पदरेणंतरिय तिपलिदोवमिएसुप्पजिय तेवट्ठिसागरोवमसदं भमिय  
मणुस्सेसुप्पजिय अंतोमुहुत्ते गदे संकिलेस पूरेदूण भुज०-अवट्ठि०कदेसु लद्धमंतरं होदि।

§ ७० सद्गी जीवोके पचेन्द्रियोंके समान भग है। इसी प्रकार आहारक जीवोंके जानना चाहिए।  
किन्तु इतनी विशेषता है कि सजियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी भुजगार  
स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल मिथ्यात्वकी अपेक्षा दो समय और शेषकी अपेक्षा सत्रह समय है।  
असंखियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी अल्पतर  
स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है।  
तथा शेष भग औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

\* आगे अन्तरानुगमका अधिकार है।

§ ७१ यह सूत्र सुगम है, क्योंकि अधिकारकी सन्द्धार करना इसका फल है।

\* मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवका जघन्य  
अन्तरकाल एक समय है।

§ ७२ क्योंकि जो कोई जीव भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंको एक समय तक  
करके और दूसरे समयमें अल्पतर स्थितिविभक्ति करके यदि तीसरे समयमें पुनः भुजगार और  
अवस्थित विभक्तियों करते हैं तो उनके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका केवल  
एक समय अन्तर पाया जाता है।

\* उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एकसौ त्रेसठ सागर है।

§ ७३ उसका खुलासा इस प्रकार है—जिन्होंने तिर्यच और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर भुजगार  
और अवस्थितस्थितिविभक्तिका प्रारम्भ किया। पुनः वहाँ पर अन्तर्मुहूर्त कालतक अल्पतर स्थिति-  
विभक्तिसे उन्हें अन्तरित किया। पुनः वे तीन पल्यकी आयुवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर और  
एकसौ त्रेसठ सागर कालतक परिभ्रमण करके मनुष्योंमें उत्पन्न हुए और वहाँ पर उन्होंने अन्तर्मुहूर्त  
कालके बाद सकलेशकी पूति करके भुजगार और अवस्थित विभक्तियोंको किया। इस प्रकार भुजगार  
और अवस्थित विभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एकसौ त्रेसठ सागर प्राप्त होता है।

§ ७४. ३

§ ७५. ३

§ ७६. ३

§ ७७. ३

§ ७८. ३

§ ७९. ३

§ ८०. ३

§ ८१. ३

§ ८२. ३

§ ८३. ३

§ ८४. ३

§ ८५. ३

§ ८६. ३

§ ८७. ३

§ ८८. ३

§ ८९. ३

§ ९०. ३

§ ९१. ३

§ ९२. ३

§ ९३. ३

§ ९४. ३

§ ९५. ३

§ ९६. ३

§ ९७. ३

§ ९८. ३

§ ९९. ३

§ १००. ३

§ १०१. ३

§ १०२. ३

§ १०३. ३

§ १०४. ३

§ १०५. ३

§ १०६. ३

§ १०७. ३

§ १०८. ३

§ १०९. ३

§ ११०. ३

[REDACTED]

३०।  
 सियस्स भंतंरं जहयसेष फलसणे  
 एमसमं कसूष विप्रिबल्ल सल्ल  
 तल्लममो।

रयं ।  
 सुवसात्-अद्विष्टात्पामि कस्य न  
 एमुपजिघ्र वेष्टिसाम्नेतेवर्गं कीने  
 मय-अद्विष्ट-कसेतु सुवसात्पामि

इसी प्रकार ब्रह्मरूपी के कण रस  
मांस कण और वे वेदों के पुत्र  
समस्त और इसी ब्रह्म कण  
जह कण और वे वेदों के पुत्र  
ज पञ्चात्मके ब्रह्मरूपी कण  
समाप्त हुआ।

मन्त्राज्यं कर्तुं इच्छन् वरुणः ।  
विश्वं विभक्तुं शक्तः श्रीमन् वरुणः ।

सामर है।

नहीं था।  
हरी पर बल्लभुर्त बल्लभ बल्लभ  
१ बल्लभुर्त बल्लभ बल्लभ  
बल्लभ बल्लभ बल्लभ बल्लभ  
बल्लभ बल्लभ बल्लभ बल्लभ  
बल्लभ बल्लभ बल्लभ बल्लभ

ਸੀ। ੨੨ ।

द्विविधिवृत्तीषु उत्तरपयस्विभ्यङ्गगार्ष्यं तरे

41

७ अप्यवरकर्मसियस्स अंतरं केषचिरं काकायो होवि ?

१७४ सुगममेदं ।

• अहयणेण एगसमभो ।

९७५ कदा ! मिच्छत्तस्स अप्पदर करेमाणेण सुखगारमबहिर्दं वा एगममय  
कादस पुणे तदियसमय अप्पदरे क्खे एगसमयमेवत्तवत्तमादो ।

\* उद्यत्सेष्य अंतोद्भूतं ।

१७६ इदो ! अप्यदर करेतेण सुखं-मवद्विदाणि अंतोमुद्रुच कार्ण अप्यदरे  
करे अतोमुद्रुचमेधंतस्वर्लमादो ।

# सेसायं पि येदम् ।

§ ७७ नहा निष्कृतस्त मोद तहा सेतपयणीय पि वेदम् । एष बुष्मिस्तप्रतिपश  
 वसिदित्यस्त उवाचगमसिदृश परवय कस्तामो ।

१७८. अतराणुगमेव बुद्धिरो विप्रेसो—ओषण जादेसेण य । तत्प ओषेण मिच्छव  
सकं-यवपोकं सुव-अवष्टिं ज० एगसं उक्कं वेवड्ढिसागरोवमसदं सादि ।  
अप्पहरं ज० एगसं, उक्कं अरोमुं । जणताणुं पवत्तं सुव-अवष्टिं

● मिथ्यात्वकी व्यस्तरस्थितिविमर्शनाछे भीषका मन्तरकात्त किठना ह ?

§ ७४ यह सूत्र सुगम है ।

\* अथन्य अन्तरकाल एव समय है ।

१७५. क्योंकि मित्रात्मकता अत्यन्त स्थितिबिम्बिका करनेवाला जिस जीवन एक समयक सिप मुहवार या अवस्थित स्थितिबिम्बिको किया पुनः वीर्य समय में यदि वह अत्यन्त स्थिति-बिम्बिको करता है तो अपने अत्यन्त स्थितिबिम्बिका एक समान अन्तर पाया जाता है।

॥ उत्कृष्ट मन्तरकाल मन्तव्यार्थ हे ।

५ ज. क्योंकि अस्मत् स्थितिभिर्मच्छिन्नो कर्मवान् विद्वांश्च अन्तर्मुहूर्तं कालवत् भुज्जगत् काले अवस्थित स्थितिभिर्मच्छिन्नो भवति । पुनरप्येव अन्तर्मुहूर्तं काले वा अस्मत् स्थितिभिर्मच्छिन्ने कालेन विभक्त्या अस्मत् स्थितिभिर्मच्छिन्न अन्तर्काल अन्तर्मुहूर्तं प्राप्त होता है ।

\* इसी प्रकार द्वेष प्रकृतियोंका भी अन्तरकाल जानना चाहिए ।

§ ७७ जिस प्रकार मित्यात्मक अन्तराल का कटावती प्रकार का प्रवृत्ति-योजना भी जानना चाहिए। इस प्रकार मित्यात्मक का वृत्तिप्रवृत्ति-योजना के द्वारा सुचित हुए अवस्था का व्याख्याना का प्रयत्न करने का है—

[illegible]

मिच्छत्तभंगो । अप्प० ज० एगस०, उक्क० वे छावट्टिसागरो० देखणाणि । अवत्तव्व० ज० अंतोमु०, उक्क० अद्धपोगलपरियट्टं देखणं । सम्मत्त-सम्मामि० भुज०-अवट्टि० ज० अंतोमुट्टत्तं, अप्पदर० ज० एगस०, अवत्तव्व० ज० पल्लिदो० असंखे० भागो । उक्क० सव्वेसि पि अद्धपोगलपरियट्टं देखणं । एवमचक्खु०-भवसिद्धियाणं ।

अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल-परिवर्तनप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है । तथा सभी स्थिति-विभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । इसी प्रकार अचक्षुदर्शनवाले और अन्य जीवोंके जानना चाहिए ।

**विशेषार्थ—**एक जीवने अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना की, पश्चात् वह कुछ कम एकसौ बत्तीस सागर तक विसयोजनाके साथ रहा और अन्तमें जाकर उसने अवक्तव्य स्थितिविभक्तिपूर्वक अल्पतर स्थितिको प्राप्त किया । इस प्रकार अनन्तानुबन्धीकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एकसौ बत्तीस सागर प्राप्त होता है । जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना की है ऐसा एक जीव मिध्यात्वमें गया और वहाँ उसने अवक्तव्य स्थितिको प्राप्त किया । तदनन्तर दूसरी बार अन्तर्मुहूर्तके भीतर उसने मिध्यात्वसे वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके और अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना करके अन्तर्मुहूर्तमें मिध्यात्वको प्राप्त किया और इस प्रकार दूसरी बार अवक्तव्यस्थितिको प्राप्त किया । इस प्रकार अवक्तव्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो जाता है । तथा जिस जीवने अर्ध पुद्गलपरिवर्तन कालके आरंभमें और अन्तमें अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना करके मिध्यात्वको प्राप्त किया है उसके अवक्तव्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण प्राप्त होता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी भुजगार और अवस्थित स्थिति सम्यग्दर्शन ग्रहण करनेके पहले समयमें होती है । अतः जिसने अन्तर्मुहूर्तके अन्दर दो बार सम्यक्त्वको ग्रहण करके भुजगार या अवस्थित स्थितिको किया है उसके उक्त प्रकृतियोंकी भुजगार या अवस्थित स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । जो सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर स्थितिको कर रहा है उसने एक समय तक भुजगार या अवस्थित स्थितिको किया और पुनः अल्पतर स्थितिको करने लगा उसके उक्त प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त होता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलनामें पल्यका असख्यातवा भागप्रमाण काल लगता है और अवक्तव्य स्थिति उद्वेलनाके बिना प्राप्त नहीं होती अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवक्तव्य स्थितिका जघन्य अन्तर पल्यके असख्यातवें भागप्रमाण कहा । जिसने अर्धपुद्गल परिवर्तन कालके प्रारंभमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी सत्ता प्राप्त करके यथासम्भव भुजगार आदि स्थितियोंको किया । अनन्तर इनकी उद्वेलना करके कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक २६ प्रकृतियोंकी सत्ताके साथ रहा । पश्चात् कुछ कालके शेष रह जानेपर पुनः इनकी सत्ताको प्राप्त करके उक्त भुजगार आदि स्थितियोंको किया । इस प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी भुजगार आदि स्थितियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण प्राप्त होता है । यहाँ हमने सब प्रकृतियोंकी भुजगार आदि स्थितियोंके अन्तरका खुलासा नहीं किया है । जिनका आवश्यक था उन्हींका किया है । शेषका मूलसे होजाता है । इसी प्रकार मार्गणाओंमें भी जहाँ जिसके खुलासा करनेकी आवश्यकता होगी उन्हींका किया जायगा ।



णाणि । अवत्तव्व० ज० अंतोमु०, उक्क० तिणिण पलिदो० पुव्वकोडिपुधत्तेणव्वहियाणि । सम्मत्त-सम्मामि० भुज० ज० अंतोमुहुत्त, अप्प० ज० एगस०, अवत्तव्व० ज० पलिदो० असंखेभागो । उक्क० सव्वेसि पि तिणिण पलिदो० पुव्वकोडिपुधत्तेणव्वहियाणि । अवट्ठि० ज० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं । एवं मणुसतिय० । णवरि मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोकसायाणं जम्हि पुव्वकोडिपुधत्तं तम्हि पुव्वकोडी देसणा ।

§ ८२. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक्क० भुज०-अप्प०-अवट्ठिदाणं जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । सम्मत्त-सम्मामि० अप्पदरस्स णत्थि अंतर । एवं मणुसअपज्ज०-एहंदिय-वादरेहंदिय-सुहुमेहंदिय-तेसि पज्जत्तापज्जत्त-सव्वणिगलंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-पंचकाय०-वादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-तसअपज्ज०-ओरालिमिस्स०-वेउ-व्वियमिस्स०-विभंगणाणि ति ।

§ ८३ देव० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक्क० भुज० अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अट्ठारससागरो० सादिरेयाणि । अप्पदर० ओघं । अणंताणु०-चउक्क० अप्पदर० ज० एगस०, अवत्तव्व० ज० अंतोमु० । उक्क० दोण्हं पि एकत्तीसं सागरो० देसणाणि ।

कि अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तान पत्य है । अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पत्य है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है । तथा सभी स्थितिविभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्व कोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पत्य है । अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व है । इसी प्रकार सामान्य, पर्याप्त और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायों की जिस स्थितिविभक्तिके रहते हुए पूर्वकोटि पृथक्त्व कहा है वहाँ कुछ कम पूर्वकोटि अन्तर कहना चाहिये ।

§ ८२ पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, तथा वादर और सूक्ष्मके पर्याप्त और अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, पाँचों स्थावरकाय तथा इनके वादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और विभगह्वानी जीवोंके जानना चाहिए ।

§ ८३ देवोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है । अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तर ओघके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा

१ ता० प्रती ओघं । अवत्तव्व०-अण-इति पाठ ।

[ १०० ]

सेपं १५०

अवत्तव्व०

अवट्ठि० ३

एवं च ।

§ ८२

रम्म वादि

जगत्त० ३

व० जंतोमु०

८४

एवमारो० ३

नामद्वयदेव

साय० वेद०

§ ८३

जयतामु०

शानादादी २

समान है । ८४

अन्तर (१५०)

पन्थायनके अम

अवस्थित स्थि

ह । मवनवमि

विशेषता है कि

§ ८२

नोकायायिका १०

स्थितिविभक्तिका

अवक्तव्य स्थिति

चतुष्ककी १२५

उत्कृष्ट अन्तर कुछ

§ ८३

अन्तर नहीं है ।

१०० पंचावतार

सवत्त, परिहायन

सम्यग्दृष्टि, चो

प्राप्त होना

§ ८३ पंच

नौ नोकपायोंका

१ आ०





सम्मत्त०-सम्मामि० भुज०-अवट्टि० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसणा । अप्पदर० ज० एगस०, अवत्तव० ज० पलिदो० असंखे०भागो । उक्क० सगट्टिदी देसणा । एवं पुरिस०-चक्खु० सण्णि त्ति ।

§ ८७. पंचमण०-पंचवचि० मिच्छत्त मोलसक०-णवणोक० भुज०-अप्पदर०-अवट्टि० ज० एगसमओ, उक्क अंतोमु० । सम्म०-सम्मामि० अप्प० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । सेसाणं णत्थि अंतरं । एवमोरालिय०-वेउव्वि०-वत्तारिकसायाणं ।

§ ८८. कायजोगि० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० भुज०-अवट्टि० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असं०भागो । अप्प० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अणंताणु०-चउक्क० अवत्तव० णत्थि अंतरं । सम्मत्त-सम्मामि० भुज०-अवट्टि०-अवत्तव० णत्थि अंतरं । अप्पदर० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । कम्मइय० छव्वीसं पयडोणं भुज०-अप्पदर०-अवट्टि० जहणुक्क० एगसमओ । सेस णत्थि अंतरं । एवमणाहार० ।

§ ८९. इत्थि० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० भुज०-अवट्टि० ज० एगस०, उक्क० पणवण पलिदो० देसणाणि । अप्पदर० ओघं । णवरि अणंताणु०-चउक्क० अप्प-

इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य स्थितिभिक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी भुजगार और अवस्थित स्थितिभिक्तियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । अल्पतर स्थितिभिक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्य स्थितिभिक्तिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असख्यातवें भाग प्रमाण है । तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार पुरुषवेदी, चन्द्रदर्शनवाले और सखी जीवोंके जानना चाहिए ।

§ ९०. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें मिध्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिभिक्तियोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर स्थितिभिक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा शेष स्थितिभिक्तियोंका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और चार कपायवाले जीवोंके जानना चाहिए ।

§ ९१. काययोगियोंमें मिध्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिभिक्तियोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असख्यातवें भाग-प्रमाण है । अल्पतर स्थितिभिक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिभिक्तिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिभिक्तिका अन्तर नहीं है । अल्पतर स्थितिभिक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । कामरूपकाययोगियोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिभिक्तियोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । शेषका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार अनाहारकोंके जानना चाहिए ।

§ ९२. स्त्रीवेदियोंमें मिध्यात्व सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिभिक्तियोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पल्य है । अल्पतर स्थितिभिक्तिका अन्तर ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी

[illegible]

देखणा । सम्मत्त सम्मामि० भुज०-अवट्टि० ज० अंतोमु०, अप्पदर० ज० एगस०, अवत्तव्व० ज० पलिदो० असंखे०भागो, उक्क० सव्वेसिं सगट्टिदो देखणा । तेउ० सोहम्ममंगो । पम्म० सहस्सारमंगो । असण्णि० एहंदियमंगो । णवरि छव्वीमपयडी० भुज० अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । आहारि० ओषं । णवरि जम्हि उवड्डुपोगलपरियट्ठं तम्हि अंगुलस्स असंखे०भागो ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

\* एणणाजीवेहि भंगविचओ

§ ६२. सुगममेदं; अहियारसंभालणफलत्तादो ।

\* संतकम्मिएसु पयदं ।

§ ६३. कुदो ? असंतकम्मिएसु भुजगारादिपदाणमसंभवादो ।

\* सव्वे जीवा मिच्छत्त-सोलकसाय-एवणोकसायाणं भुजगारद्विदिविहत्तिया च अप्पदरद्विदिविहत्तिया च अवट्टिद्विदिविहत्तिया च ।

§ ९४. एदेसिं कम्माणं भुजगार-अप्पदर-अवट्टिद्विदिविहत्तिया सव्वे जीवा ते णियमा अत्थि त्ति संवंधो कायवो ।

\* अणंताणुवंधीणमवत्तव्वं भजिदव्वं ।

भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर पत्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है । तथा सभीका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । पीतलेश्यामें सौधर्मके समान भंग है । पद्मलेश्यामें सहस्सारके समान भंग है । असन्नियोंमें एकेन्द्रियोंके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि छव्वीस प्रकृतियोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है । आहारकोंके ओषके समान है । इतनी विशेषता है कि जहाँ उपार्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण अन्तर कहा है वहाँ इनके अंगुलके असख्यातवें भागप्रमाण अन्तर कहना चाहिये ।

इस प्रकार अन्तराणुगम समाप्त हुआ ।

\* अब नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमका अधिकार है ।

§ ६२ यह सूत्र सुगम है, क्योंकि इसका फल अधिकारकी सम्हाल करना है ।

\* सत्कर्मवाले जीवोंका प्रकरण है ।

§ ६३. शका—सत्कर्मवाले जीवोंमें ही इस अधिकारकी प्रवृत्ति क्यों होती है ?

समाधान—क्योंकि जिन जीवोंके मोहनीयकर्मकी सत्ता नहीं है उनमें भुजगारादि पदोंका पाया जाना सम्भव नहीं है ।

\* मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकषायोंकी भुजगारस्थितिविभक्तिवाले, अल्पतरस्थितिविभक्तिवाले और अवस्थितस्थितिविभक्तिवाले सब जीव नियमसे हैं ।

§ ६४ इन पूर्वोक्त कर्मोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जो सब जीव हैं वे नियमसे हैं ऐसा यहाँ सबन्ध करना चाहिये ।

\* अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अवक्तव्य पद भजनीय है ।



णियमा अत्थि । अणंताणु०चउक० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णियमा अत्थि । अवत्तव्वं भयणिजा । सिया एदे च अवत्तव्वविहत्तिओ च, सिया एदे च अवत्तव्वविहत्तिया च । सम्मत्त०-सम्मामि० अप्पदर० णियमा अत्थि । सेसपदा भयणिजा । एवं तिरिक्ख०-कायजोगि०-ओरालिय०-णउंस०-चत्तारिक०-असंजद०-अचक्खु०-किएह-णील-काउ०-भवसि०-आहारि ति ।

§ ९९. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-चारसक०-णवणोक० अप्पदर०-अवट्ठि० णियमा अत्थि । [ भुज० भयणिजा० । ] सिया एदे च भुजगारविहत्तिओ च, सिया एदे च भुजगारविहत्तिया च । अणंताणु०चउक० अप्पद०-अवट्ठि० णियमा अत्थि । सेस-पदा भयणिजा । सम्मत्त-सम्मामि० ओघभंगो । एवं सव्वणेरइय-पंचिंदियतिरिक्ख-तिय०-मणुसतिय०-देव०-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिंदिय-पंचि०पज्ज-तस-तसपज्ज०-

मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नाकपायोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । अवक्तव्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव भजनीय हैं । कदाचित् ये भुजगारादि बिभक्तिवाले बहुत जीव होते हैं और अवक्तव्यबिभक्तिवाला एक जीव होता है । कदाचित् ये भुजगारादिबिभक्तिवाले नाना जीव होते हैं और अवक्तव्य बिभक्तिवाले नाना जीव होते हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिबिभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । तथा शेष पदवाले जीव भजनीय हैं । इसी प्रकार तिर्यच, काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुसकवेदवाले, क्रोधादि चार कषायवाले, असंयत, अचलुदर्शनवाले, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले कपोतलेश्यावाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

**विशेषार्थ**—मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषाय इन २२ प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित ये तीन पद होते हैं जो सर्वदा पाये जाते हैं इसलिये इनकी अपेक्षा एक ध्रुवभंग ही होता है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कके चार पद हैं जिनमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित ये तीन पद ध्रुव हैं और अवक्तव्यपद अध्रुव है । अवक्तव्यपदवाला कदाचित् एक जीव होता है और कदाचित् नाना । अब इन दो भगोंमें ध्रुवभग और मिला दिया जाता है तो अनन्तानुबन्धीकी अपेक्षा कुल तीन भग प्राप्त होते हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके चार पद हैं । जिनमें भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य ये तीन भजनीय और एक अल्पतर ध्रुव है, अतः यहाँ कुल २७ भग होते हैं, क्योंकि एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा तीन भजनीय पदोंके २६ भग और उनमें एक ध्रुव भगके मिलानेपर कुल २७ भग होते हैं । तिर्यच आदि मूलमें गिनाई गई कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमें यह ओघ प्ररूपणा घटित हो जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है ।

§ ६६ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकपायोंकी अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । इनके भुजगार पदवाले जीव भजनीय हैं । कदाचित् ये नाना जीव हैं और एक भुजगार स्थितिबिभक्तिवाला जीव है । कदाचित् ये नाना जीव हैं और नाना भुजगार स्थितिबिभक्तिवाले जीव हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीव नियमसे हैं तथा शेष पद भजनीय हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओघके समान है । इसी प्रकार सब नारकी, पचेन्द्रिय तिर्यच, पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पचेन्द्रिय तिर्यच यानिमती, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्सार स्वर्गतकके देव, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, ब्रह्म, ब्रह्मपर्याप्त पोंचों मनोयोगी, पोंचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवद-





सप्तमपदं-भाषोऽ-न-  
न मयि । शरत्तमिरीता  
मुद्रते । शरत्तमिरीता  
मि-मुद्र-यो-मि-मय-  
न-सम्पत्ति-सु-  
न-सम्पत्ति-सु-

श्रुति । एतत्तत्त्वोपे-  
तः-सु-मुद्रतमिरीता-  
तत्त्व-मुद्र-मय-सु-  
दत्ता-मुद्र-सु-मुद्रतमिरीता-

शरत्तमिरीता-सु-  
मुद्रतमिरीता-सु-  
मुद्रतमिरीता-सु-

ने विपत्तः, शरत्तमिरीता-  
सु-मुद्रतमिरीता-सु-  
मुद्रतमिरीता-सु-  
मुद्रतमिरीता-सु-

विपत्तः शरत्तमिरीता-  
सु-मुद्रतमिरीता-सु-  
मुद्रतमिरीता-सु-  
मुद्रतमिरीता-सु-

विपत्तः शरत्तमिरीता-  
सु-मुद्रतमिरीता-सु-  
मुद्रतमिरीता-सु-  
मुद्रतमिरीता-सु-

पञ्च-[वपद-भाषोऽ-न-  
न मयि । शरत्तमिरीता  
मुद्रते । शरत्तमिरीता  
मि-मुद्र-यो-मि-मय-  
न-सम्पत्ति-सु-  
न-सम्पत्ति-सु-

एवं पाषाडीपेदि मयविषयो समयो ।

५१०४ मागाभागागुगमेण दुविहो गिरेसो-भोषे-भावेसे । भोषेण मिच्छत  
शरत्तमिरीता-सु-  
मुद्रतमिरीता-सु-  
मुद्रतमिरीता-सु-

उत्ते पयसि और अपयसि बन्धनविधिविह, शरत्तमिरीता-सु-  
मुद्रतमिरीता-सु-  
मुद्रतमिरीता-सु-

विपत्तः शरत्तमिरीता-  
सु-मुद्रतमिरीता-सु-  
मुद्रतमिरीता-सु-  
मुद्रतमिरीता-सु-

५१०४ मागाभागागुगमेण दुविहो गिरेसो-भोषे-भावेसे । भोषेण मिच्छत  
शरत्तमिरीता-सु-  
मुद्रतमिरीता-सु-  
मुद्रतमिरीता-सु-

विपत्तः शरत्तमिरीता-  
सु-मुद्रतमिरीता-सु-  
मुद्रतमिरीता-सु-  
मुद्रतमिरीता-सु-



केव० ? असंखेजा भागा । सेस० असंखे०भागो । एवं तिरिक्ख कायजोगि-ओरालिय०-  
णवुंस०-चत्तारिक०-असंजद०-अचक्खु०-तिणिले०-भवसि०-आहारि ति । -

§ १०५. आदेसेण णेरहएसु एवं चेव । णवरि अणंताणु० चउक्क० अवत्तव्वमसंखे०-  
भागो । एवं सत्तसु पुढवीसु पंचिदियतिरिक्खतिय०-देव०-भवणादि जाव सहस्सार०-  
पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तत्त-तत्तपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्वि०-इत्थि०-पुरिस०-  
चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सण्णि ति ।

§ १०६. पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० छव्वीसं पयडीणमेवं चेव । णवरि अणंताणु०-  
चउक्क० अवत्तव्व० णत्थि । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं णत्थि भागाभागं; एगप्पदर-  
पदत्तादो । एवं मणुसअपज्ज०-सव्वएहंदिय-सव्वविगल्लिदिय०-सव्वपंचकाय-तत्तअपज्ज०-  
ओरालियमिस्स०-वेउव्वि०-मिस्स-कम्मइय-मदि-सुद०-विहंग०-मिच्छादिट्ठि-असण्णि०-  
अणाहारि ति ।

§ १०७. मणुस० णिरओघं । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० एवं चेव । णवरि जम्हि  
असंखे०भागो तम्हि संखे०भागो कायव्वो ।

§ १०८. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जो ति अणंताणु०चउक्क० अप्प० सव्वजी०  
के० ? असंखेजा भागा । अवत्तव्व० अमंखे०भागो । सम्मत्त-सम्मामि० ओघं ।

सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात  
बहुभाग हैं । तथा शेष पदवाले असंख्यातवें भाग हैं । इसी प्रकार तिर्यच, काययोगी, औदारिक-  
काययोगी, नपुसकवदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि तीन  
लेश्यावाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

§ १०५. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि  
अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवाले असंख्यातवें भाग हैं । इसी प्रकार सातों  
पृथिवियोंके नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती, सामान्य  
देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्त्रार स्वर्गतकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त,  
पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, चक्षुदर्शनवाले  
पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, और सही जीवोंके जानना चाहिए ।

§ १०६ पंचेन्द्रियतिर्यचअपर्याप्तकोमें छव्वीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा इसी प्रकार जानना चाहिए ।  
किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अवक्तव्यपद नहीं है । तथा सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिथ्यात्वका भागाभाग नहीं है, क्योंकि यहाँ इन दोनों प्रकृतियोंका एक अल्पतरपद है ।  
इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, सब पाँचों स्थावर  
काय त्रस अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, मत्त्यज्ञानी,  
श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

§ १०७ सामान्य मनुष्योंमें सामान्य नारकियोंके समान जानना चाहिए । मनुष्य पर्याप्त और  
मनुष्यनियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि जहाँ असंख्यातवों भाग  
कहा है वहाँ संख्यातवों भाग कर लेना चाहिये ।

§ १०८ आनत कल्पसे लेकर उपरिम प्रवेयक तकके देवोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अल्पतर  
स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । तथा अवक्तव्य



सम्मत्त-सम्मामि० भुज०-अवट्टि० अवत्तव्व० केत्ति० ? संखेज्जा । सेसपयडीणं सव्व-  
पदा० अणंताणु० भुज०-अप्प०-अवट्टि० सम्म०-सम्मामि० अप्प० के० ?  
असंखेज्जा ।

§ १११. मणुसपज्ज० मणुसिणी० सव्वपयडी० सव्वपदा० के० ? सखेज्जा । एवं  
सव्वट्टु०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अरुसा०-मणपज्ज० संजद०-सामाह्य-छेदो०-  
परिहार० सुहुम० जहाक्खादसंजदे त्ति ।

§ ११२. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जो त्ति सव्वपयडीण सव्वपदा० के० ?  
असंखेज्जा । एवं सुकले० । अणुदिसादि जाव अवराइद त्ति सव्वपयडि० अप्पदर०  
के० ? असंखेज्जा । एवमामिणि० सुद०-ओहि०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-  
खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति ।

§ ११३. एइंदिएसु मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोरु० सव्वपदा० के० ? अणंता ।  
सम्मत्त सम्मामि० अप्पदर० के० ? असंखेज्जा । एवं सव्वएइदिय-वणप्फदि०-वादर-  
सुहुमपज्जत्तापज्जत्त-णिगोद०-वादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त - ओरालियमिस्स - कम्मइय-  
मदि०-सुद० मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति । विगालिंदियाणं पंचिदियतिरिक्ख-  
अपज्जत्तभंगो । एव पवि०-अपज्ज०-चत्तारिकाय तस अपज्ज०-वेउव्वियमिस्स-विहग-

स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? सख्यात हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी भुजगार,  
अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? सख्यात हैं । तथा शे । प्रकृतियोंके  
सब पदवाले अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबिभक्तिवाले तथा सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं ।

§ १११ मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदवाले जीव कितने हैं ?  
सख्यात हैं । इसीप्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगत-  
वेदवाले, अकपायवाले, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-  
विशुद्धिसयत, सूक्ष्मसापरायिकसयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिए ।

§ ११२ आनतकल्पसे लेकर उपरिमग्रैवेयकतकके देवोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदवाले जीव  
कितने हैं ? असख्यात हैं । इसी प्रकार शुक्लेश्यागाले जीवोंमें जानना चाहिए । अनुदिशसे लेकर  
अपराजिततकके देवोंमें स । प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असख्यात  
हैं । इसीप्रकार आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासयत, अवधिदर्शनी,  
सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और  
सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए ।

§ ११३ एकेन्द्रियोंमें मिध्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके सब पदवाले जीव कितने  
हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ?  
असख्यात हैं । इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, उनके वादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त  
और अपर्याप्त, निगोद, उनके वादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाय-  
योगी, कर्मणकाययोगी, मत्स्यज्ञानी, श्रुतज्ञानी, मिध्यादृष्टि, असंखी और अनाहारक जीवोंके जानना ।  
विकलेन्द्रियोंके पंचेन्द्रियतिर्यश्च अपर्याप्तकोंके समान भग है । इसीप्रकार पंचेन्द्रिय अपर्याप्त,  
पृथिवी आदि चार स्थावरकाय, त्रय अपर्याप्त, वैकिचिकमिश्रकाययोगी और विभंगज्ञानी जीवोंके

वाचि वि । अथय० छम्पीसपपदि० मदि०मगो ।

एव परिमालागुगमो समघो ।

§ ११४ खेचागुगमेव दुविहो शिर्हो-ओक्क आदेसेय य । ओपेव सिम्बप  
बारसक०-गवबोक्क० तिप्पिपदा केवडि खेचे ? सम्बहोगे । अर्णातापु०-वउक्क० एप  
वेव । एवरि अबर० सोगस्स असले०मागे । सम्मय०-सम्माभि० सम्बपदा० सोग०  
असले०मागे । एव तिरिक्क०-कामबोगि० आरासिय०-ययुस०-यघारिक०-अससद०  
अयक्कु० तिप्पिले० मयसि०-आहारि वि ।

§ ११५ आदेसेय येरएयु सम्बपपदी०-सम्बपदा के० सोग० असले मागे । एव  
सम्बयेरहय-सम्बपचिदियतिरिक्क०-सम्बमयुस०-सम्बदव०-विगडिदिय-सम्बपचिदिय-  
बादरुपरिपन्ड० बादरमाउपन्ड०-बादरसेउपन्ड०-बादरवाउपन्ड०-बादरवन्पप्पसिपचेय  
पन्ड०-सम्बतस०-ययमम०-ययववि०-वेउम्बिय०-वेउ मिस्स० आहार०-आहारमिस्स०-  
इरिय०-युसि०-विहग०-आमिभि०-मुद०-बोहि०-ययपन्ड०-सजद०-सामाहय०-केदो०-  
परिहार०-सुइम०-ब्रहाक्खाल०-सजदासजद०-यक्कु०-ओहिदंस० तिप्पिले०-सम्मादिहि०  
खइय०-वेदय०-उवसम०-सासाण० सम्माभि०-सम्बि वि । एवरि बादरमाउपन्डय०  
सम्माय०-सम्माभि० अय्पदरवन्म सोग० सले०मागे ।

जानना चाहिये । अन्त्योर्मि प्रवृत्तियों की अपेक्षा सत्यज्ञानियों के समान संग है ।

इस प्रकार परिमालागुगम समाप्त हुआ ।

§ ११६ केचलगुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओपनिर्देश और आदेरनिर्देश ।  
इनमें से ओपकी अपेक्षा सिध्दात्त बाह्य कथाय और सो नोकवायके हीन पदवाले बीच कितने क्षेत्रमें  
रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । अन्ततुक्कयीक्कुप्पकी अपेक्षा इसीप्रकार जानना । किन्तु इतनी  
विशेषता है कि अन्ततुक्कय स्थितिभिन्नस्थानों बीच लोकके अस्तित्वात्में भाग क्षेत्रमें रहते हैं । सम्बन्ध  
और सम्मामिध्दात्तक सब पदवाले बीच कितन क्षेत्रमें रहते हैं ? ओक्के अस्तित्वात्में भाग क्षेत्रमें  
रहते हैं । इसी प्रकार सामान्य स्थिति, कास्मयीगी औदारिककाययोगी, ययु सम्बदवाले, अघादि  
कर्मों कथावाले, अयक्कु बादरुपरीनवाले कृष्णदि हीन लेखवाले मय और आहारक  
बीचके जानना चाहिये ।

§ ११७ आदेराकी अपेक्षा मार्गकर्मों सब प्रवृत्तियों के सब पदवाले बीच कितने क्षेत्रमें रहते  
हैं ? ओक्के अस्तित्वात्में भाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेत्थियतिरिक्क, सब  
समुच्च सब वेव सब निक्केन्द्रिय, सब पंचेत्थिय, बाहर श्रुतिबीकाधिकपथाय, बाहर वलकपथिक  
पथाय, बाहर अतिरिक्कपथाय बाहर वामुकाधिकपथाय बाहर वनस्पतिरिक्क प्रवृत्तरी  
पथाय सब अय, यौर्वा यनायोगी यौर्वा वनवागी वैभिककाययोगी, वैभिकपथिसिक्कपथाय, आहारकाययोगी, आहारकथिसिक्कपथाय, बीरववाले पुत्तववाले विम्वहानी, आदिभिन्नविक्क-  
हानी, अमहानी, अचिह्वहानी अनत्यवहानी, संसत सामागिकसंसत केरापस्वपनासंसत परिहार  
किन्नुसिंसंसत सुममसंसपरायिकसंसत यवास्वपनासंसत संघासंसत, वहुपरीनवाले (अचिह्वरीनवाले,  
पीत आदि तीन ज्ञायवाले, सम्मरपि, वाचिकसम्मरपि, वक्कसम्मरपि, वपरायसम्मरपि,  
कासात्तसम्मरपि, सम्मरियप्पह्यदि औरसंती बीचके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि  
बादरमायुक्कयिकर्यात्तक बीचमें सम्मरव और सम्मरियप्पह्यकी अघरशर स्थितिभिन्नवाले  
बीचका ओपकर दोष पदवाले बीच ओक्के संभवात्में भाग क्षेत्रमें रहते हैं ।

§ ११६. एहंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक० णवणो० भुज०-अवट्ठि-अप्पदर० ओघं । सम्मत्त सम्मामि०-अप्पदर०-ओघं । एवं वादर-सुहुमेहंदि-पज्जत्तापज्जत्त पुढवि०-वादरपुढवि०-अपज्ज०-सुहुमपुढवि०-पज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त०-तेउ०-वादरतेउ०-अपज्ज०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ-पज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेयसरीरअपज्ज०-वणप्फदि०-णिगोद०-वादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि०-सुद० मिच्छादि०-असण्णि०-आहारि ति ।

§ ११८. अवगद० सव्वपयडि० अप्प० लोग० असंखे०भागे । एवमकसा० । अभवसि० छव्वीसपयडीणं मदि०भगो ।

एवं खेत्ताणुगमो समत्तो ।

§ ११८. पोसणाणुगमेण दुविहो णिहेसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण

§ ११६ एकेन्द्रियोमे मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नाकपायोंकी भुजगार, अवस्थित और अल्पतर स्थितिभिभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिभिभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है । इसी प्रकार वादर और सूक्ष्म एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वादर वनस्पति प्रत्येकशरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक तथा उनके वादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, निगोद, तथा उनके वादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मण-काययोगी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असङ्गी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ११७ अपगतवेदियोंमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिभिभक्तिवाले जीव लोकके असंख्या-तवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार अकपायी जीवोंके जानना चाहिए । अभव्योंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा मत्स्यज्ञानियोंके समान भग है ।

**विशेषार्थ**—ओघसे मिथ्यात्व सोलह कपाय और नौ नाकपायोंकी भुजगार, अवस्थित और अल्पतर स्थितिवाले जीव अनन्त हैं और ये सब लोकमें पाये जाते हैं, अतः इनका क्षेत्र सब लोक कहा । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिवाले और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वके सब पदवाले जीव असंख्यात होते हुए भी स्वल्प हैं, अतः इनका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । यह व्यवस्था तिर्यचगति आदि मूलमें गिनाई हुई मार्गणाओंमें वन जाती है, अतः इनके कथनको ओघके समान कहा । आदेशसे जिस मार्गणावाले और उसके अवान्तर भेदोंका जितना क्षेत्र है उसमें २६ प्रकृतियोंके सम्भव पदवालोंका उत्तना क्षेत्र कहा । किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा सर्वत्र सम्भव पदवालोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र सर्वत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ ११८ स्पर्शानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।

मिच्छत्त-सोलसक०  
लोणो । ३०  
वादरमाणा वा  
नागो पाल्लो  
अपज्ज०-सुहुम  
अवट्ठि-अप्पदर  
§ ११६.  
लोग० असंखे०

तत्थ ओघेण  
किन्ने अवका मगो  
अपज्जत्तापज्जत्त  
अपज्जत्तापज्जत्त  
ह । सम्यक्त्व और  
किन्ने ह । तादृक्  
लोक क्षेत्रमा सग  
असंख्यातवें भाग  
है । इस प्रकार  
वाचक जानना चाहिये

**विशेषार्थ**—  
और अल्पतर स्थिति  
सब लोक कहा ।  
असंख्यातवें भाग है  
सब सम्यक्त्व तथा  
सब नालीके क्षेत्र  
सब लोकके क्षेत्र  
क्षेत्र लोकके क्षेत्र  
नालीके क्षेत्र  
चौद भाग प्रमाण  
प्रकारसे वतलाया है  
लाया है । कुछ कम  
और सब लोक स्पर्श  
अपेक्षा लोकके  
वतलाया है और  
है । यहाँ कुछ और  
अनको ओघके  
§ ११८.  
पदवाले नावोंने

• इह-अस्मिन्न-संज्ञा ।  
न-प्रत्ययान्त-पुंसि-वचने  
तत्र-सुदृढ-वाक्य-प्रमाणम् ।  
तः-वाद-वाक्य-प्रमाणम् ।  
इति-निष्पाद्य-वचन-प्रमाणम् ।  
इति-अन्तर्ग-वचन-प्रमाणम् ।  
• अन्ते-वचनम् । इत्येवम् ।

भिच्छन्न-भारतसक-अवगोहः । तिष्ठ पदम् विहृतिपिह केवहिय लेख पोसिद ? सम्भ  
 डोगो, । अर्गवापु-पठकः । एव भैव । गवरी अरुचम्भ- डोग- असले-भागो म्ह  
 भोरसभाया वा देवणा । सम्भ-सम्भाभि- अम्भर- के- ले- पो- ? ठोग असले-  
 भाभो पोसिदो म्ह भोरस- देवणा सम्भडोगो वा । सेसविहृतिपिह केव- ? खाग-  
 असले-भागो म्ह भोरस- देवणा । एव कायभोगि-अचारिकसा- असद-  
 अरुचम्भ-अरुचि-आहरी ति ।

§ ११९. आहसेष येत्यसु पिच्छसु-भारसक-गवर्जोक्तं-विण् पदार्थ निहाति-  
 क्षोभ-असत्वे-नामो ह भोक्तुं हेतुना । अणुताण्डुलवत्क-एव-येव । यस्मिन्

कर्मसे ओषधी बनेका मिथ्यात्व, बापू कृपाय और नौ नाकपायोंके तीन पक्षविषयकता हीर्षीन कितने ज़ेबका सपना दिखाये । इसी ज़ेब कोझका सपना दिखाये । अनन्तसुखी कपडुकी बनेका हरी प्रकाश जानना चाहिए । किन्तु इतनी विषेष्टता है कि बचकपक्ष स्थितिबिषयकतासे हीर्षीन लोके प्रसन्नतासे भाग और सब नालीके बीरह भागोंसे कुछ कम आठ मागप्रमात्र ज़ेबक सपना दिखाये । सम्पन्न और सम्पत्तिमालीकी अस्पन्न स्थितिबिषयकतासे हीर्षीन कितने ज़ेबका सपना दिखाये । लोके प्रसन्नतासे भाग प्रसन्न नालीके बीरह भागोंसे कुछ कम आठ माग और सब लोके ज़ेबका सपना दिखाये । उपाय सब विषयकतासे हीर्षीन कितने ज़ेबका सपना दिखाये । लोके प्रसन्नतासे भाग और सब नालीके बीरह भागोंसे कुछ कम आठ मागप्रमात्र ज़ेबक सपना दिखाये । इसी प्रकार कायबोगी, कोषाधि बारी कयायबोगी, अस्पन्न, ब्रह्महारीनी, अन्य और ब्रह्महारी हीर्षीके जानना चाहिए ।

विशिष्टार्थ—भोज्योप निष्पन्न, सोढाह भ्याय और नो नोष्पार्थकी सुभार, अवस्थाय और अणुपर स्थितिवाले बीच अन्तर है और ये सब शोकमें पाये जाते हैं अतः इनका स्वरो र्ण सब शोक है। अन्तर्गुणान्तर गुणधुकी अवच्छय स्थितिवाले बीचोबीच होतमो अन्तर शोक अवस्थामें आता है क्योंकि वहीमान कसमें किन्हीं अस्तिवालावस्थोक्ति निर्दोषावना की है ऐसे बीच सम्पत्तयके अन्तु शोक निष्पन्नमयं जानेवाले बहुत ही बोधे हैं। तथा अतीत कालमें स्वरा प्रप्त नाहीके कुछ कम आठ बने और आता है क्योंकि वहीपि अगर हीमें भैयेयक एक और तीये आठ में एक कम के बीच अन्तर्गुणधुकी अवस्थाम स्थितिपर फरते हुए पाये जाते हैं। परन्तु हन्तय केय शोकके अवस्थामयं आता ही है। किन्तु यह सब पुराने देशोपा विराचत्तु स्वस्थान सब नाहीके आठवते और आता है अतः इनका अतीत कालीन स्वरो नस नाहीके कुछ कम आठवते और आता प्रमाण आता है। समस्तक और सम्प्रतिष्ठापनकी अवस्था स्थितिवालावस्थोक्ति स्वरो तीन प्रकारके बतलाया है। इनमेंसे शोकका अवस्थामयं आगमप्रत्यय स्वरा वहीमान कालकी अयेया वन- काला है। कुछ कम आठवा और आग प्रमास स्वरो विचार बाधि पर्योकी अयेया बतलाया है। और सब शोक स्वरो आगप्रतिष्ठ तथा उपपत्त पर्योकी अयेया बतलाया है। तथा सब पर्योकी अयेया हो क्योंकि अवस्थामयं आग प्रमास स्वरो कालाया है वह वर्तमान कालकी प्रमासगत बतलाया है और कुछ कम आठवा और आग प्रमास स्वरो अतीत कालकी अयेया बतलाया है। अतः कुछ और आगेवादि सिनाई हैं किन्तु सब शोकके समान प्रमाण होतम, अतः कन्ने अन्तर्गुणधुकी प्रमाण आता है। और कस्योतीति धारि ।

§ ११६ आबेरानी अफेसा पारकिमेंमें मिष्मल, बाह्य कपाय और नौ मोड़बाबोंके तीन पक्षसे जीर्णोन्नि कालके अर्थक्यातमें भाग और प्रथमासीके चौदह भागमेंसे कुछ कम ब्रह्म भाग

[illegible]

५) लकड़होई पुष्प, बरौली  
म पाल उल्लू है, बड़ा मूला हा हा  
मिर्मिमात्र होते सम्पन्न हा  
। मूला है, बड़ा मूला हा हा  
कोई दुखी मिमा पु पुष्पको  
। मोरोहा कि हा हा हा हा  
। सम्पन्न हा हा हा हा हा  
हा हा हा हा हा हा हा हा  
हा हा हा हा हा हा हा हा  
हा हा हा हा हा हा हा हा

६-शोधनित और आर्द्रकर्मिण।

अवत्तव्व० खेत्तभंगो । सम्मत्त०-सम्मामि० अप्पदर० लोग० असंखे०भागो छ चोदस० देसणा । सेस० लोग० असंखे०भागो । पढमाए खेत्तभंगो । विदियादि जाव सत्तमि त्ति णिरयोधो । णवरि सगपोसणं कायव्वं । तिरिक्ख० ओघं । णवरि अट्ठ चोदस भागा त्ति णत्थि । एवमोरालिय०-णवुंस०-तिणिलेस्सा त्ति ।

§ १२०. पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज-पंचि०तिरि०जोणिणी० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक० सव्वपदानं वि० के० खे० पो० १ लोग० असंखे०भागो सव्व-लोगो वा । णवरि अणंताणु०चउक० अवत्तव्व० इत्थि०-पुरिस० भुज०-अवट्ठि० खेत्तभंगो । सम्म०-सम्मामि० अप्पदर० मिच्छत्तभंगो । सेस० खेत्तभंगो । एवं मणुस-तिय० । पंचिदियतिरिक्ख०-अपज्ज० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक० तिणिलेस्सा०

प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अपेक्षा इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यका भग क्षेत्रके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छहभाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा शेष स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । पहली पृथिवीम स्पर्शका भग क्षेत्रके समान है । दूसरीसे लेकर सातवीं तक सामान्य नारकियोंके समान स्पर्श है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपना अपना स्पर्श कहना चाहिये । तिर्यचोंमें ओघके समान स्पर्श है । किन्तु इतनी विशेषता है कि आठवटे चौदह भाग यह विकल्प नहीं है । इसी प्रकार औदारिककाययोगी, नपु सकवेदी और कृष्णादि तीन लेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—सामान्यसे नारकियोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और कुछ कम छहवटे चौदह राजु प्रमाण बतलाया है । वह यहाँ सब प्रकृतियोंके सब पदोंकी अपेक्षा बन जाता है । किन्तु इसके दो अपवाद हैं । एक तो अनन्तानुबन्धी चतुष्कके अवक्तव्य पदकी अपेक्षा यह स्पर्श नहीं प्राप्त होता, क्योंकि ऐसे जीव भारणान्तिक समुद्धात या उपपाद पदसे रहित होते हैं । इसलिये उनके लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही स्पर्श पाया जाता है । दूसरे सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके अल्पतर पदको छोड़कर शेष पदोंकी अपेक्षा भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्श प्राप्त होता है । कारण वही है जो अनन्तानुबन्धीके अवक्तव्य भगके सम्बन्धमें बतलाया है । प्रथमादि नरकोंमें भी इसीप्रकार अपने अपने स्पर्शको जानकर कथनकर लेना चाहिये । यद्यपि तिर्यचोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदोंकी अपेक्षा ओघके समान स्पर्श बन जाता है किन्तु यहाँ कुछ कम आठवटे चौदह राजु स्पर्श नहीं प्राप्त होता, क्योंकि यह स्पर्श देवोंकी प्रधानतासे बतलाया है परन्तु तिर्यचोंमें देव सम्मिलित नहीं हैं । औदारिककाययोग आदि मार्गणाश्रमों में भी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिये ।

§ १२०. पचेन्द्रियतिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यच पर्याप्त और पचेन्द्रियतिर्यच योनिमती जीवोंमें मिध्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकपायोंके सब पदविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवालोंका तथा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका भग क्षेत्रके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर स्थितिवालोंका भग मिध्यात्वके समान है और शेषका भग क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार सामान्य, पर्याप्त और मनुष्यिनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके जानना चाहिये । पचेन्द्रिय





अवट्टि०-अवत्तव्य० लोग० असंखे०भागो अट्ट चोदम० देखणा । अप्पदर० लोग० असंखे०भागो अट्ट-णव चोदस० देखणा । एव सोहम्म० । भवण०-वाण०-जोदिसि० एवं चेव । णवरि अट्टधुट्ट-अट्ट-णव चोदस० देखणा । सणक्कुमारादि जाव महस्सार० सव्वपयडि० सव्वपदवि० लोग० असंखे०भागो अट्ट चोद० देखणा । आणदादि जाव अच्चुदे त्ति सव्वपय० सव्वपदवि० लोग० असंखे०भागो छ चोदस० देखणा । एवं सुक० । उवरि खेत्तभगो । एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवग०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय छेदो० परिहार०-सुहम०-जहाक्खाद०-अभवसिद्धिया त्ति ।

§ १२२. एहंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोको० तिण्हं पटाणमोघं । सम्मत्त०-सम्मामि० अप्पदर० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो । एवं चत्तारिकाय-वादरअपज्ज०-सव्वेसिं सुहमपज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेय०-अपज्ज०-वणप्फदि-णिगोद०-ओरालिय-मिस्स०-कम्मइय०-मदि०-सुद०-मिच्छाडडि-असण्णि०-अणाहारि त्ति ।

स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसीप्रकार सौधर्म और ऐशान स्वर्गक देवोंके जानना चाहिये । भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके इसीप्रकार जानना । किन्तु इतनी विशेषता है कि उन्होंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढेतीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । आनतसे लेकर अच्युत कल्पतकके देवोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसीप्रकार शुक्ल-लेखावाले जीवोंके जानना चाहिए । ऊपर नौ प्रवेयक आदिमें स्पर्श क्षेत्रके समान हैं । इसीप्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायी, मनःपर्ययज्ञानी, सयत, सामाधिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसापराधिकसयत, यथाख्यातसयत और अभव्य जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—पूर्वमें नरकगति आदिमें स्पर्शका जो विवेचन किया है उसे ध्यानमें रखते हुए देवोंमें और उनके अवान्तर भेदोंमें यदि सब प्रकृतियोंके यथासम्भव पदोंकी अपेक्षा स्पर्शका विचार किया जाता है तो किस अपेक्षा कहों कितना स्पर्श बतलाया है वह बात सहज ही समझमें आजाती है । इसीलिये यहाँ अलग अलग खुलासा नहीं किया है । तथा 'एव' कह कर जो आहारककाय-योग आदिमें स्पर्शका निर्देश किया है उसका यही अभिप्राय है कि जिसप्रकार नौ प्रवेयक आदिमें स्पर्श क्षेत्रके समान है उसी प्रकार इन मार्गणाओंमें भी जानना चाहिये ।

§ १२२ एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, खोलह कपाय और नौ नोकपायोंके तीन पदवाले जीवोंका स्पर्श ओघके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श पंचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्तकोंके समान है । इसीप्रकार पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय इनके बादर तथा बादर अपर्याप्त, सभी सूक्ष्म तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और उनके अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मण काययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १२३. तिग्गार-वि-  
इयि०-गुण-  
वे। पत्ती ३४  
तिग्गारि  
इ मरु ३  
§ १२४. वैकि

विशेषार्थ—  
मन्त्र सव नर-  
और सव नर-  
सव नर-  
मिथिवानो-  
सव नर-  
उदि सव-  
§ १२३. वैकि  
और नौ नर-  
मगोंमेंसे कुछ कम  
है कि चौदह और  
चौदह भागोंमेंसे कुछ  
नौ चतुष्ट-  
विशुद्धि-  
आवके समान है ।  
चतुष्टय-  
मगोंमेंसे आ और  
चौदह भागोंमेंसे कुछ  
विशेषार्थ—  
और पुरुषवेदका म-  
एव वनताया है वह  
सर्वा माणान्तिक-  
अपेक्षा इससे अधिक  
वर्णित कर लेना चाहिए  
मुनगार और  
आण यह है कि ये न-  
आर विहार करते हुए  
अन- ननका स्पर्श  
विशेषार्थ नहीं आती ।  
§ १२४ वैकि  
६



भागो अट्ट तेरह चोदसभागा वा देखणा । णवरि इत्थि०-पुरिस० भुज०-अवट्टि० अट्ट-  
बारस चोदस० देखणा । अणंताणु०चउक० एवं चेव । णवरि अवत्तव्व० ओघं ।  
सम्मत्त-सम्मामि० अप्पदर० मिच्छत्तमंगो । सेस० ओघ । वेउव्वियमिस्स० खेत्तमंगो ।

§ १२५, विहंग० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक० तिण्णिपदा सम्मत्त-सम्मामि०  
अप्पदर० पंचिदियमंगो । आभिणि०-सुद०-ओहि० सव्वपयडि० अप्पदर० लोग०  
असंखे०भागो अट्ट चोद० देखणा । एवमोहिदंस०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-  
सम्मामिच्छादिट्ठि ति । संजदासंजद० सव्वपयडि० अप्पदर० लोग० असंखे०भागो छ  
चोदस भागा वा देखणा । तेउ० सोहम्ममंगो । पम्म० सहस्सारमंगो । सासण० सव्व-  
पयडि० अप्पदर० लोग० असंखे०भागो अट्ट बारस चोदस० देखणा ।

एवं पोसणाणुगमो समत्तो ।

जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछकम आठ और कुछकम  
तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी  
भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछकम आठ  
और कुछकम बारह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा  
इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका  
भंग ओघके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका-  
भंग मिथ्यात्वके समान है । तथा शेष कथन ओघके समान है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें  
क्षेत्रके समान भंग है ।

**विशेषार्थ—**अन्यत्र वैक्रियिककाययोगियोंका स्पर्श जो तीन प्रकारका बतलाया है वही यहाँ  
मिथ्यात्व आदिके तीन पदोंकी अपेक्षा प्राप्त होता है जो मूलमें बतलाया ही है । किन्तु इनमें स्त्री-  
वेद और पुरुषवेदकी भुजगार और अल्पतर स्थितिवालोंका वही स्पर्श प्राप्त होता है जो पचेन्द्रिय  
जीवोंके पहले बतला आए हैं इसलिये यहाँ इसका तत्प्रमाण कथन किया । वैक्रियिककाययोगियोंमें  
अनन्तानुबन्धी चतुष्कका स्पर्श इसी प्रकार है । यह जो कहा है सो इसका यह तात्पर्य है कि जिस  
प्रकार इनमें मिथ्यात्व आदिके सम्भव पदोंका स्पर्श बतलाया है उसीप्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्कके  
अवक्तव्य पदको छोड़कर शेष पदोंका स्पर्श जानना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ १२५ विभगज्ञानियोंमें मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके तीन पद और  
सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरस्थितिका भंग पचेन्द्रियोंके समान है । आभिनि  
बोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिबिभक्तिवाले  
जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण  
क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि,  
उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । सयतासयतोंमें सब प्रकृतियोंकी  
अल्पतर स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे  
कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । पीतलेश्याका भंग सौधर्मके समान और  
पद्मलेश्याका भंग सहस्तर कल्पके समान है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर  
स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ  
कम आठ और कुछ कम बारह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

गा० २२ ]

\* १२६

\* १२७

\* १२८

\* १२९

\* १३०

\* १३१

\* १३२

\* १३३

\* १३४

\* १३५

\* १३६

\* १३७

\* १३८

\* १३९

\* १४०



§ १३१. कुदो ? णाण।जीवप्पणाए सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणमप्पदरद्विदिविहत्तियाणं तिसु वि कालेसु विरहाभावादो ।

\* सेसाणं कम्माणं विहत्तिया सव्वे सव्वद्धा ।

§ १३२. कुदो, अणंतरासीसु भुजगार-अवद्धिद-अप्पदराणं विरहाभावादो ।

\* णवरि अणंताणुबंधीणमवत्तव्वद्विदिविहत्तियाणं जहणणेण एगसमम्भो ।

§ १३३. कुदो, अवत्तव्वं कुणमाणजीवाणमाणंतियाभावादो । ण सम्मत्तअप्पदर-विहत्तिएहि वियहिचारो; सम्मत्तप्पदरस्सेव अणंताणुबंधीणमवत्तव्वस्स सगपाओग्गगुणद्धाए-सव्वसमए असंभवादो ।

§ १३१ क्योंकि नाना जीवोंकी अपेक्षासे सम्यक्त्व और सम्यग्मिग्यात्वकी अल्पतर स्थिति-विभक्तिको करनेवाले जीवोंका तीनों ही कालोंमें विरह नहीं होता ।

\* शेष कर्मोंकी सब स्थितिविभक्तिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं ।

§ १३२ क्योंकि शेष कर्मोंकी भुजगार, अवस्थित और अल्पतर स्थितिविभक्तियोंको करने-वाली जीवराशि अनन्त है, अतः उनका कभी विरह नहीं होता ।

\* किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीकी अवक्तव्यस्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है ।

§ १३३ क्योंकि अवक्तव्य स्थितिविभक्तिको करनेवाले जीवोंका प्रमाण अनन्त नहीं है । यदि कहा जाय कि इस तरह तो सम्यक्त्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके साथ व्यवहार हो जायगा, क्योंकि इनका प्रमाण भी अनन्त नहीं है अतः इनका भी विरह पाया जाना चाहिये, सो बात नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार सम्यक्त्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिके योग्य सब काल हैं उस प्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिविभक्तिके योग्य सब काल नहीं हैं अतः अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सर्वदा पाया जाना सम्भव नहीं है ।

**विशेषार्थ**—यहाँ यह बतलाया है कि चूँकि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थिति-विभक्तिवालोंका प्रमाण अनन्त नहीं है अतः उनका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय बन जाता है । इस पर यह शका की गई है कि सम्यक्त्वकी अल्पतर स्थितिवालोंका भी प्रमाण अनन्त नहीं है परन्तु उनका काल सर्वदा बताया है अतः उस कथनके साथ इसका व्यवहार प्राप्त होता है । तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्वकी अल्पतर स्थितिवाले जीव भी असंख्यात हैं और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिवाले जीव भी असंख्यात हैं । अतः अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिवाले जीव अनन्त नहीं होनेसे इनका जघन्य काल यदि एक समय माना जाता है तो 'अनन्त नहीं होनेसे' यह हेतु व्यवहारित हो जाता है, क्योंकि सम्यक्त्वकी अल्पतर स्थितिवाले जो कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिवालोंके विपक्ष हैं उनमें भी यह हेतु चला जाता है । वीरसेन स्वामी ने इस शकाका जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि यद्यपि ये दोनों विभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं फिर भी सम्यक्त्वकी अल्पतर स्थितिवालोंका सर्वदा काल बन जाता है, क्योंकि सम्यक्त्वकी अल्पतर स्थितिका एक जीवकी अपेक्षा जो जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक एकसौ बत्तीस सागर बतलाया है उसे देखते हुए उसका सर्वदा पाया जाना सम्भव है । परन्तु यह बात अनन्तानुबन्धीकी अवक्तव्यस्थितिकी नहीं है क्योंकि एक जीवकी अपेक्षा



भागो । सम्मत्त-सम्मामि० ओघं । एवं सच्चणिरय-पंचिदियतिरिक्ख पंचि०तिरि०-पञ्ज०-पंचि०तिरि०जोणिणी-देव०-भवणादि जाव सहस्सार-पंचिदिय-पंचि०पञ्ज० तस तस-पञ्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउच्चिय०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सण्णि ति ।

१३७. पंचि०तिरि०अपञ्ज० मिच्छत्त-सोलसक० णवणोक्क० तिण्हं पदार्णं णेरइयाणं भंगो । सम्मत्त०-सम्मामि० अप्पदर० केव० ? सच्चद्धा । एवं वियलिय पञ्जत्तापञ्जत्त पंचि०अपञ्ज० बादरपुढविपञ्ज० बादरआउपञ्ज०-बादरतेउपञ्ज०-बादरवाउपञ्ज०-बादर-वणप्फदिपत्तेय०पञ्ज०-तसअपञ्ज०-विहंगणाणि ति ।

अपेक्षा ओघके समान भंग है । इसी प्रकार सब नारकी, पचेन्द्रिय तिर्यश्च, पचेन्द्रिय तिर्यश्च पर्याप्त, पचेन्द्रिय तिर्यश्च योनिमती, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्तर स्वर्गतकके देव, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेद-वाले, पुरुषवेदवाले, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और सही जीवोंके जानना चाहिए ।

**विशेषार्थ**—नारकियोंके एक जीव की अपेक्षा मिथ्यात्व आदि २२ प्रकृतियोंकी अल्पतर और अवस्थित स्थितिभिक्तियोंका जो काल बतला आये हैं उसे देखते हुए यहाँ नाना जीवों की अपेक्षा उनका सर्वदा काल प्राप्त होता है अतः यहाँ उनका सर्वदा काल बतलाया है । किन्तु भुजगार स्थितिकी यह बात नहीं है । नाना जीवोंकी अपेक्षा भी यदि इसके उपक्रम कालका विचार किया जाता है तो उसका जघन्य प्रमाण एक समय और उत्कृष्ट प्रमाण आवलिके असख्यातवें भाग-प्रमाण प्राप्त होता है इसलिये यहाँ इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्कके पदोंका भी यथायोग्य विचार कर लेना चाहिये । सम्यक्त्व और सम्यग्मि-थ्यात्वकी अल्पतर स्थितिवाले जीव नरकमें भी सर्वदा पाये जाते हैं । अब रहे शेष पदवाले जीव सो उनका उपक्रम कालके अनुसार पाया जाना सम्भव है । ओघमें भी यही बात है । अतः सम्य-क्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सब पदोंके कालको ओघके समान बतलाया । आगे जो और मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको सामान्य नारकियोंके समान बतलाया ।

§ १३७ पचेन्द्रिय तिर्यश्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके तीन पदवाले जीवोंका भंग नारकियोंके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थिति-विभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सब काल है । इसी प्रकार विकलेन्द्रिय और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, त्रस अपर्याप्त और विभगज्ञानी जीवोंके जानना चाहिए ।

**विशेषार्थ**—पचेन्द्रिय तिर्यश्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व आदि २६ प्रकृतियोंके अल्पतर आदि तीन पदोंका काल नारकियोंके समान बन जाता है इसलिये यहाँ इनके कथनको नारकियोंके समान बतलाया है । यहाँ अनन्तानुबन्धीकी अवक्तव्य स्थिति नहीं होती यह स्पष्ट ही है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी एक अल्पतर स्थिति ही होती है । साथ ही यहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मि-थ्यात्वकी सत्तावाले जीव नियमसे पाये जाते हैं, इसलिये इसका काल सर्वदा बतलाया है । आगे जो और मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी यह व्यवस्था बन जाती है अतः उनके कालको पचेन्द्रिय तिर्यश्च अपर्याप्तकोंके समान बतलाया है ।

१ ता० प्रती 'अपञ्ज०' इति पाठः ।

१३८. मयुज  
चेव । णवरि अत्र  
सम्मामि० अयत्त  
एवाप्त०, उह० सच्च  
असंखे० भागो तमि  
इव० अप्पद० मयु  
असंखे० भागो । पव.

१३९. आ०  
सुवद्धा । अपातायु  
बवत्त० ल० ५५  
तुक्के० । ५५

§ १३८ साम  
समान है । अनन्तानु-  
बन्धन स्थिति-विभक्ति  
समान समय है ।  
अतः है ? सब काल है  
अतः है ? जघन्य काल  
मनुष्योंके जानना  
अतः है वहाँ सख्यात  
नौ नोकषायोंकी भुजग  
सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्प-  
तर उत्कृष्ट काल पर्याप्त  
स्थिति-विभक्तिवाले जीव

**विशेषार्थ**—  
अतः इनमें  
सम्यक्त्व और सम्यग्मि-  
थ्यात्वके सब पदोंके काल  
बतलाना चाहिये ।  
मनुष्योंके जिन स्थिति-  
विभक्तियोंके सख्यात समय के  
प्रमाण प्राप्त है अतः यहाँ  
भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट  
काल आनलीके  
§ १३९ आ०  
नौ नोकषायोंकी भुजग  
अवक्तव्य स्थिति-विभक्ति  
भुजगार, अवस्थित और  
अतः आनलीके असंख्य





सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाहय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०दिट्ठि ति ।

१४०. एहंदिणसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणो० सव्वपदानमोघं । सम्मत्त०-सम्भामि० अप्पद० केव० ? सव्वद्वा । एवं वादरेहंदिण-सुहुमेहंदिणपज्जत्तापज्जत्त-वादर-पुढविअपज्ज०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउअपज्जत्तापज्जत्त-वादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउअपज्जत्तापज्जत्त-वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउअपज्जत्तापज्जत्त-वणप्फदि-णिगोद-वादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेयसरीरअपज्ज०-ओरालिय-मिस्स०-मदि०-सुद०-मिच्छादि० असण्णि ति ।

है। इसी प्रकार शुक्ललेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिए। अनुदिशमे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार आनिभिद्योधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदो-पस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सयतासयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

**विशेषार्थ**—आनतादिकमें मिथ्यात्व आदि २६ प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थिति ही होती है अतः वहाँ इसका सर्वदा काल वन जाता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीकी अवक्तव्य स्थिति भी होती है सो उपक्रम कालके अनुसार इसका यहाँ भी ओघके समान काल बतलाया है। अब रहीं सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियाँ सो इनके यहाँ चारों पद वन जाते हैं। उनमेंसे तीन पदोंका तो उपक्रम कालके अनुसार जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण बतलाया है। और अल्पतर स्थितिवालोंका सर्वदा सद्भाव पाया जाता है इसलिये इसका सर्वदा काल बतलाया है। शुक्ललेश्यामें यह व्यवस्था वन जाती है, अतः उसमें सब प्रकृतियोंके सम्भव पदोंके कालको पूर्वोक्त प्रमाण कहा है। अनुदिशादिमें तो सब प्रकृतियोंकी एक अल्पतर स्थिति ही होती है, परन्तु वहाँ सब प्रकृतियोंका सर्वदा सद्भाव पाया जाता है इसलिये वहाँ अल्पतर स्थितिका सर्वदा काल बतलाया है। आभिनिवाधिकज्ञानी आदि जो और मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार बतलानेका कारण यह है कि उनमें भी अनुदिशादिकके समान व्यवस्था प्राप्त होती है।

§ १४० एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके सब पदोंका भग ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरस्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सब काल है। इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय और इन दोनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वनस्पति, निगोद तथा इन दोनोंके वादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, मत्तज्ञानी, श्रुतज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असज्जी जीवोंके जानना चाहिए।

**विशेषार्थ**—ओघमे मिथ्यात्व आदि २६ प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदोंका जो काल कहा है वह एकेन्द्रियोंकी मुख्यतासे ही बतलाया है अतः यहाँ उक्त प्रकृतियोंके उक्त पदोंके कालको ओघके समान कहा। तथा एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका एक अल्पतर



\* अंतरं ।

§ १४३. सुगमं, अहियारसंभालणफलत्तादो ।

\* सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अवत्तव्वद्विदिविहृत्तियंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

§ १४४. एदं पि सुगमं ।

\* जहणणेण एगसमओ ।

§ १४५. कुदो ? सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगारमवत्तव्वं च कादूण सम्मतं पडि-वज्जमाणजीवाणं जह० एगसमयमेतंतरुवलंभादो ।

\* उक्कस्सेण चउवीसमहोरत्ते सादिरेगे ।

§ १४६. सामणेण सम्मत्तगहणंतरकालो चउवीसं अहोरत्तमेत्तो ति पुव्वं परुविदो । संपहि अवत्तव्वभावेण सम्मत्तगहणंतरकालो वि तत्तिओ चेवे ति कथमेदं जुज्जदे ? ण एस

सम्यग्दृष्टियोंका जघन्य काल एक समय है, अतः यहाँ जघन्य काल एक समय मतलाया है । उत्कृष्ट काल पूर्ववत् है । कार्मणकाययोग और अनाहारक जीवोंका सर्वदा काल है । यही बात औदारिक-मिश्रकी है, अतः यहाँ सब प्रकृतियोंके सम्भव पदोंका काल औदारिकमिश्रके समान बन जाता है । किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिवालोंके कालमें विशेषता है । बात यह है कि एक जीवकी अपेक्षा कार्मणकाययोग और अनाहारक अवस्थाका उत्कृष्ट काल तीन समयसे अधिक नहीं है और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाले जीव असंख्यात होते हुए भी स्वल्प हैं । अब यदि उपक्रम कालकी अपेक्षा विचार किया जाता है तो यहाँ आवलिके असंख्यातवें भागसे अधिक काल नहीं प्राप्त होता । अतः यहाँ उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण मतलाया है ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

\* अब अन्तरानुगम का अधिकार है ।

§ १४७ यह सूत्र सुगम है, क्योंकि इसका फल अधिकारका सन्हालनामात्र है ।

\* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अवक्तव्य स्थितिभिक्तिका अन्तरकाल कितना है ?

§ १४८. यह सूत्र भी सुगम है ।

\* जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

§ १४५ क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार और अवक्तव्यके साथ सम्यक्त्व-को प्राप्त होनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समयमात्र पाया जाता है ।

विशेषार्थ—सम्यग्दर्शनके प्राप्त होनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अवक्तव्य स्थिति होती है । अब यदि प्रथम और तीसरे समयमें बहुतसे जीव उक्त पदोंके साथ सम्यग्दर्शनको प्राप्त हुए और दूसरे समयमें नहीं हुए तो उक्त पदोंका जघन्य अन्तर काल एक समय प्राप्त हो जाता है । यह उक्त सूत्रका भाव है ।

\* उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक चौबीस दिन रात है ।

§ १४६. शंका—पहले सामान्यसे सम्यक्त्वके ग्रहणका अन्तरकाल चौबीस दिन रात कहा है अब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्यस्थितिभिक्तिके साथ सम्यक्त्व ग्रहणका अन्तर-

